# Shri Gangottari Kshetramahatmyam Gomukhiyatra Gangastotrasangraha

# श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः

## Document Information


Text title : Gangottari Kshetramahatmyam Gomukhiyatra Gangastotrasangraha

File name : gangotrikShetramAhAtmya.itx

Category : devii, devI, nadI, mAhAtmya

Location : doc_devii

Author : Swami Tapovanam

Transliterated by : Swamini Tattvapriyananda tattvapriya3108 at gmail.com

Proofread by : Swamini Tattvapriyananda tattvapriya3108 at gmail.com

Description/comments : Gangotri, Gangastotra, Gomukhiyatra, with Hindi Translation

Latest update : October 27, 2018

Send corrections to : sanskrit@cheerful.com



This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

**Please help to maintain respect for volunteer spirit.**


Please note that proofreading is done using Devanagari version and other language/scripts are generated using **sanscript**.

December 17, 2022

*sanskritdocuments.org*

# श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः

श्री गङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहसहितम्
हिन्दी अर्थसहित
ग्रन्थकारः :- पूज्यपाद श्रीस्वामी तपोवनम्

## प्रार्थना

अयि पाठकगण !
अचलराज श्री हिमालय के चिरकाल निवासी सुप्रसिद्धनामा ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ स्वामी तपोवनजी महाराज की ये दो-तीन कृतियां श्री गङ्गाजी की कृपा से पुनरपि आपके सामने रखनेका सुयोग मिला है । सुशिक्षित विद्वजनों से पूरित किसी आधुनिक नगरको विभूषित करनेको अधिकार रखते हुए भी श्री स्वामी जी विविक्त दुर्गम हिमालय प्रदेशको ही प्यार करते हैं । मेरा विश्वास है, कि यह कोई पूर्व कर्म प्रेरणा का फल होगा । सन् १९४१ ई० के अगस्त के महीने में साक्षात् श्री गोमुख के पास भूर्ज-वनोंसे परिवृत्त एक विशाल मंजुन मैदानमें श्री स्वामीजीके दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था । स्वामीजी उस समय उधर निवास करते थे । वहां पर श्री स्वामीजी के मित्र वर्ग थे; भेड़ बकरी चराने वाले, कोई अपरिष्कृत पर्वतीय लोग । स्वामीजीको अपनी उच्च सभ्यता, तथा उन्नत दार्शनिक विद्वत्ताका अभिमान छोडकर उन लोगों के साथ बड़े प्रेम एवं समभावसे सहोदर के समान बातचीत आदि व्यवहार करते हुए मैंने देखा । हमने तो मनमें कहा-यह है शुद्ध साधुता ! सभ्यता तथा विद्वत्तासे परे साधुता भी एक मधुर अमूल्य चीज है । "विद्वान् न भाति पुरुषेषु निरक्षरेषु" यह न्याय अक्षरशः सत्य है । तथापि प्रेमभाव ऐसा एक मोहक पदार्थ है, जो पशु पक्षियोंके ऊपर भी

अपना प्रभाव जमाता है । हृषीकेश में एकबार एक उच्च शिक्षित महात्मा ने श्रीस्वामीजी से इस प्रकार पूछा था-"गंगोत्तरी के मुख में जाकर निवास करनेका क्या लाभ है ! आपके चिरकालका अनुभव बताइये । सब जगह मन ही है । राग, द्वेष, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, पाखण्डता, उद्दण्डता आदि चित्त दोष कहीं जाने पर भी निवृत्त नहीं होते । वे केवल विचार और वैराग्य से निवृत्त होते हैं । इसलिए वहीं बैठकर भी विचार एवं वैराग्यके द्वारा ज्ञानका संपादन तथा ज्ञानकी रक्षा भी पुरुष कर सकते हैं । स्वामीजीने परिमित शब्दोंमें इस प्रकार उत्तर दिया, "आपका मत बिलकुल ठीक है । मैं भी उसका अनुमोदन करता हूँ । परन्तु मैं तो केवल प्रकृति सौन्दर्यके तथा उसके द्वारा अनायासेन परमेश्वर सौन्दर्य के नित्यनिरन्तर रसास्वादन में उत्कण्ठित होकर प्रतिवर्ष उस प्रान्तमें जाया करता हूम् । और अलसता एवं चंचलताको छोड़ कर सश्रद्ध अध्यात्म साधना करने वाले अधिकारी पुरुषों के लिए भी अपनी अलौकिक शान्ति, महिमा, एवं आध्यात्मिक वातावरण से विश्व विख्यात यह उत्तराखण्डका भी उत्तराखण्ड महान सहायक तथा लाभ दायक होता है । " श्री स्वामीजी के इस प्रकार के नाना लोकोत्तर चरित एवं उपदेशों का वर्णन करनेका यह अवसर नहीं है । संक्षेपसे इतना मात्र कहना चाहता हूं कि श्री स्वामीजी गंगोत्तरी गोमुख प्रान्तका अत्यधिक प्रेमादर करते हैं, और उसके प्रमाण हैं ये छोटी सुन्दर सरस कृतियाम् । बुदि पूर्वक ही हमने इन ग्रन्थोंको "सुन्दर, सरस" दो विशेषण दिये हैं । क्योंकि साहित्य गुणोंसे रहित, रसशून्य, केवल चार पादवाले पदसमुदाय कवि कर्ममर्मज्ञ पण्डितोंकी मण्डलीमें चतुष्पात् नामसे ही विदित है; सुन्दर, सरस कृति या रचनाके नाम से तभी श्लाघित हुआ करते यदि ग्रन्थ साहित्य गुण युक्त एवं रस पूरित हो ।

हिमालय स्वयं ही एक महान विभूति है । अतः वह ईश्वरांश ही है । इसमें फिर जो जगदेक वन्द्या, दिव्य वैभववती, भगवती भागीरथी श्री गंगाजी अपने शुद्ध, अकलुष सर्वाङ्ग सुन्दर बालिका रूपसे बहती हैं, और इस कारण से ही जो अतिशय पाप-नाशिनी है, उनके माहात्म्यका वर्णन ही क्या करना ?

धर्म की दृष्टि जिन्हें प्राप्त नहीं, ऐसे आजकलके अपने लोगभी
सृष्टि सौन्दर्यकी दृष्टिमे भी यदि कोई सर्वोत्तम वस्तु देखना
चाहें तो गौमुख का-जहां से गंगा निकलनी शुरु होती है उस अद्भुत
स्थानका-दर्शन करना जरूरी है । उस अमत सृष्टि सौन्दर्य
के दर्शनसे अपने आप कैसे भी शून्य हृदयवाले पुरुष के भाव
बदल जायेंगे तो फिर धर्म भावना जिसमें है, उस की कथा ही क्या
कहना ? धर्म बुद्धि से श्रद्धापूर्वक तीर्थों में भ्रमण, स्नान,
भजन और दान आदि परम्परागत अदूषित सत्कर्मों के अनुष्ठान को
किसी अधिकारियोंके लिये किसी सीमा तक कल्याण के साधन मान करके
ही अद्वैत ब्रह्मवादी होते हुए भी विचार-कला कोविद श्री स्वामीजीने
इन ग्रंन्थों की रचना की है ।

प्रथमावृत्ति झटपट खतम हो गयी और इस दूसरी आवृत्ति की
मांग आने से इसे फिर प्रकाशित करने का भाग्यवान तथा आपके
अनुग्रह का भाजन भी हुआ हूँ ।

श्री गंगोत्तरी तथा गंगेत्तरी भक्ष श्री स्वामीजी की जय !
अपका विधेय अहमदाबाद
अहमदाबाद । १० वल्लभराम शर्मा, वैद्यराज वा० १५-२०४६

आयुवाचार्य, वनस्पति शास्त्री तीसरी आवृत्तिकी आवश्यकता हुई ।
ग्रंथ की उपयोगिता और सौन्दर्य बढ़ाने के लिये ग्रन्थकार पूज्य
श्री स्वामीजी से हो रचित कुछ नये पद्यों को ग्रन्थ में तत्र तत्र
मिलाकर इसपर इसे कुछ वधितरूपस्वी प्रकाशित कर रहा हूँ ।

अहमदाबाद २५-२-१९५३

## वनवाणी

पश्यन्तु केचिदमलं जलमेव गङ्गेत्यन्ये वयन्तु भवयन्त्रविमुक्तिहेतुः ।
श्रीमूलशक्ति रखिलेश्वररूपरूपिण्यानन्दकन्दमिति नित्यमुपास्महे त्वाम् ॥
(गङ्गास्तोत्रम्)

अथ किंलक्षणकं पवित्र क्षेत्रमित्याकांक्षायामिदं वदामो
यदकृच्छ्रेणैव पवित्रभावभावकत्वं तल्लक्षणमिति । पवित्रेषु च
भावेषु भावुकतमः खलु पारमेश्वरो भाव इति सर्वसम्मतिपत्रम् । तथा

चैकान्ततयैतल्लक्षणलक्षितानि त्रिपथगोचरादीन्युत्तराखण्डमूर्द्धन्यानि
क्षेत्राणीति लक्षणप्रमाणाभ्यां पावित्र्यसिद्धिस्तेषाम् ।
ननुलक्षणमिदमसम्भवदोष विदूषितं, यतस्तत्रत्यानामविशेषतया
निरवशेषाणामपि पुरुषाणां, तथा शार्दूलमाल्लूकप्रभृतीनां
तिरश्चीनानाञ्च पवित्रभावभाविता प्रसज्यत इति चेत् ,
प्रसज्यतां नाम ! ततः किं बिभेति भवान् ? अश्यमस्ति हि गङ्गोत्तरादि
पुण्यक्षेत्रवर्तिनां सर्वेषामपि प्राणिनामनितरसाधारणः पवित्र भावः ।
किन्तु स्यादयं प्रौढवादः । तथाऽपि क्रिया खलु करण कारकमपि
समपेक्षते स्वजनुषि, न केवल शरणं, किन्तु पटुकरणमपेक्षत
इति शास्त्रकृत्समयः । तथा च सति, यदि करणापटुतया सम्यगिव
यः कश्चिद्वस्तुनिष्ठगुण ग्रहणासमर्थस्तर्हि गुणविरहविशिष्टं
वस्तु कथं स्यात् १ हन्त ! हन्त ! यदि सेवको न पश्यति
प्रचण्डमार्तण्डमण्डल-गतं प्रभापटलं, किमु तत्तमोमण्डलमतः
सम्पद्यत ? न कदापि । एवमेव हि यदि योग्यकरण निर्धनतया नालं
कश्चिद्गङ्गोदयादिस्थानानां पावित्र्यगुणमप्रतिष्टम्भमास्वादयितुं ,
तर्हि तद्देशनिष्ठनैसर्गिकतद्गुणविरहः कथमुपवप्येत ?

अतश्च नूनमनवद्यलक्षणसमन्वयात्, अर्थतः सुखेनाध्यात्मिकादि
मेध्यभावजनकत्वगुणयोगादिदं जह्नुजोदारं पूतात्प्रभूततरं
क्षेत्रामत्यत्र नास्ति संशातिलेशः । अहा ? खलु दिव्य दिव्येन
प्राकृतिकसुनामौष्ठव वितानेन, प्रशान्तैकान्ततरेण
च निजादक चक्रवालान्तरालनाथ च पतितपावन्या
नित्यनिर्मल निरर्गलसलिल-प्रवाहे, ततश्च परितः शश्वत
पारमेश्वरभावप्रसारणवैभवेनैतदतुलित माहात्म्यं जेजीयतेऽस्मिन्
जगति । अतएव च पृथिवीपृष्ठनिष्ठानामखिलपुण्यस्थलीनां
गणनाप्रसङ्गे सुष्ठु कनिष्ठि कामतिरभसरंहसाऽधितिष्ठतायं
गारशरःस्थलीति नश्चप्रच मेतत् । अपि चेह
बहुषु सुसम्मतेष्वपि पुण्यक्षेत्रेषु, हन्त ! हन्त
कालस्यन्दनमधिरूढाया अपावित्र्यपिशाचिकाया निजवयस्याजनोपास्यमानाया
महतोल्लासयात्राकोलाहलेन, बीभत्सतरेण चाट्टहासेन, समन्ततो
मुखरीक्रियमाणेषु ज्योत्स्नासङ्काशमन्दस्मितविकसितमुखी
सत्त्वसंहनना श्रीपावित्र्यदेवताऽद्याप्यकम्पमाना

शान्त्यादिस्वसखसम्बजुष्टाऽभिरक्षत्यकुतोभयमिमां भगीरथतपे
भुवमित्यहो ! महानम्वाया अनुग्रहः ॥

तत्तादृशगुणगरिम्णो गङ्गोत्तरस्य,
तथाऽन्यासाचेदरदेशस्योद्रक्सीमावर्तिनीनां पुण्यवसुन्धराणां
सौम्यकाशी, हृषिकेश, बदरीश, कैलास शैलप्रमुखाणां
कतृमुपकान्ता पौन:पुन्येन तीर्थयात्रा मुख्तनूरुहाणां जातकर्म
महोत्सवात् प्रागेव दक्षिण देशस्य दक्षिण सीमातश्चेतः स्यन्दन
मधिरोहद्भरमाभिर्मङ्गु शब्दावगततत्तत्प्रभावमहोदयैः ।
मनोमुकु जिघन्तु तत्रभवन्तः । तत्फलं तु स्वयं श्रीमन्त एव हि
जानन्तीत्युपरम्यत इति शम् ॥

यत्सूत्रयन्त्रितं विश्वं नरीनर्ति जगत्त्रयम् ॥

सन्तस्तमेव पृच्छन्तु यदत्र स्खलितं मम ॥

इत उत्तरकाशी
निःस्वानामस्वामी ७-१२-१९३६
वामी तपोवनम्
॥ श्रीहरिः ॥

## भूमिका

इस शोक मोह संतापपुर्ण संसारमें यदि त्रितापनाशिनी कलकलनिनादिनी मुनिमनहारिणी भगवती भागीरथी न होती, तो हम सर्व साधनशून्य पामर प्राणियों के लिये यह पृथ्वी नरकके समान बन जाती । इस सर्व साधनविहीन कलिकाल में भगवती सुरसरि ही हम पापियोंका एक मात्र सहारा है । जिस संसार में पग पग में पाप होने की संभावना है, श्वास प्रश्वास में भी जहां हिंसा है, उस जगत में पापसे पैदा हुआ यह प्राणी पुण्यप्रद कार्य करही कैसे सकता है ? किन्तु धन्य हैं वे राजर्षि भगीरथ जिनके चिर कालके तपसे लोकपितामह भगवान ब्रह्मदेव प्रसन्न हुए और जिन्होंने इस पापपूरित धराधामपर पापों को समूह नष्ट करनेवाली देवसरिताके त्रिताप नाशक सुधाका सब के लिये सुलभ बना दिया । सुना है कल्पतरुके नीचे बैठने से सभी प्रकार की वांछायें पूर्ण होजाती हैं, किन्तु उस कल्पतरुके दर्शन कितने

लोगोंने किये हैं ? सुना है शशि सम्पूर्ण संतापों को मेंट देते हैं, किन्तु विरहिणी सदा शशिको खरीखोटी ही सुनाती रहती है, फिर शशि बेचारे एक दिन पूर्ण रूप से दर्शन देते हैं । तापको मेटनेवाले शशि तो साल में एक दिन ही शायद ये पूर्णिमा के दिन उदित होते हैं । किन्तु ये भागीरथी सुधासरिता तो सदा संसारी - संतापोंसे संतप्त प्राणियों के पापों को बिना भूमिका विश्राम के निरंतर धोती रहती हैं । इनके यहां भेदभाव नहीं, उंचनीचका ध्यान नहीं; समय असमयका विचार नहीं; पात्र अपात्र की परिभाषा नहीं; छोटे बड़े पापों का हिसाब नहीं । यहाँ तो "दरस परस अरु मंजन पाना । कट हि पाप कहैं वेद पुराना ।" वेदपुराण इसके साक्षी हैं । दर्शन करना दूर की बात है । पुराण तो पुकार पुकार कर कह रही है :-

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

कैलासपर स्थित शिवजीकी जटाओंसे बहकर वे बर्फके नीचे २ बदरिकाश्रमके समीपस्थ एक पर्वतपर आती है, उस स्थानको "गोमुख" कहते हैं । वहां गौके मुखके समान बर्फ की गुफा है बस उसी गुफा में से सर्व प्रथम श्रीगंगाजी के दर्शन होते हैं । वहां से १३-१४ मील नीचे गंगोत्रीस्थान है; जहांपर बैठ कर राजर्षि ने घोर तपस्या की थी । वहीं गौरीकुण्ड है; और वहींपर वे अपने दिव्यस्वरूपसे सदा विचरण करती रहती है । इसीलिये उस स्थानका नाम गंगोत्री है । गंगोत्रीका प्राकृतिक दृश्य कितना मनोरम है, कितना नयनाभिराम है, कि इसका वर्णन करना इस निर्जीव लेखनीकी शक्ति के बाहिरकी बात है । चारों और के सुन्दर हरियाली, भोजपत्र और देवदारु के दर्शनीय और नयनाभिराम तरुओंकी सघन पंक्तियां श्वेतरजत के समान स्वच्छ और चमक ले पर्वत दर्शककी दृष्टिको अतृप्त बनाते रहते हैं; वहाँ खड़े होते ही हृदय थिरकने लगता है, मनमें मीठी २ हिल रे उठने लगती हैं । अहा ! उस अनुपम दृश्य और अकथनीय सौन्दर्यराशिका वर्णन कौन करने में समर्थ हो सकता है ? बस इतना ही कहा जा सकता है, "गिरा अनयन नयन बिनु वानी ।" ।

चिरकालसे मेरी अभिलाषा थी, कि जहां श्री गंगाजीका नित्य निवास है, जहाँ भगीरथकी तपोभूमि है और जहां गौरी अपनी सखियों के सहित सदा विचरण करती हैं । उस अनुपम स्थान का दर्शन करके अपने नेत्रों को कृतार्थ करू और वहां स्नान करके अपने पाप तापों से मुक्त होउ । कई बार संयोग जुटा किन्तु बीच में ही छिन्नभिन्न हो गया, क्योंकि वहां जाने के लिये अनन्त पुण्योंकी आवश्यकता है ।

पार साल यह संयोग बन गया । हरिद्वार तक तो कई बार जाना पड़ा है और वहां चिरकाल तक निवास भी किया है । हरिद्वार से ही श्री गंगाजी अपने पिता गिरिराजकी गोदीसे उतर कर पृथ्वीपर पधारी हैं; अतः हरिद्वार ही इनका आदिस्थान समझा जाता है । प्रयागमें श्री यमुनाजीसे मिली हैं और बड़ी हुई हैं, यह इन का मध्य स्थान है । और गंगासागर में जाकर ये समुद्र के साथ एकीभूत हो गई हैं, अतः यह इनका अंतिम स्थल है ॥

हरिद्वार में गंगाजी ने अपना बालचापल्य कुछ कम कर दिया है, वे सयानी बालिकाकी तरह कुछ गंभीर होगई हैं, किन्तु स्वभावमें चुलबुलापन वहाँ भी मौजूद है । हृषीकेश में यहांसे कुछ चापल्य विशेष है; ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाइये, त्यों ही त्यों गंगाजीके बालसुलभ चापल्यके साथ तुम्हारा मन नृत्य करने लगेगा । देवप्रयाग में अलकनंदाके साथ इनकी कुस्ती देखकर तो मन प्रेमानन्दमें विभोर हो जाता है ।

उत्तरकाशी में गंगाजीकी छटा विचित्र ही है । ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाइये, इनके जलमें शीतलता, स्वच्छता, चंचलता और चपलता बढ़ती ही दिखाई देगी । जहां पर वरुणा और असीके संगम हुए हैं, वे दोनों स्थान परमरम्य दर्शनीय और मनमोहक हैं । आगे "भास्कर प्रयाग" (भटवाटी) आ जाता है । ऐसी किंवदन्ती है, कि आचार्यचरण भगवान आदि शंकराचार्य से पहले और पीछे भी बहुत कालतक कोई भी यात्री गंगोत्री तक नहीं पहुंचता था । भटवाटी में ही श्रीभागीरथीजी का पूजन होता था । वहींसे दर्शन कर के यात्री लौट आते थे । भटवाटी से आगे हरसल ( हरिप्रयाग ) तकका दृश्य तो मनुष्यकी कल्पना के बाहिर है । यहांपर गंगाजीका प्रयाग का सा दृश्य है, यहाँ न छोटी बालिकाकी तरह

चिल्लाती है, न चपलता करती है । हरसल में कई गंगायें आकर भागीरथी में मिली हैं । वह दृश्य लेखनी से अंकित किया ही नहीं जा सकता । हरसलसे एक प्रकार से गंगोत्री ही आ जाती है । वहांसे दो मील आगे धराली है । यह स्थान बड़ा ही रमणीय है । यहांसे तीन मील पर जह्नुऋषि का स्थान है । अकस्मात् सामने हर हर करती हुई भूटानी गंगा दिखाई देती है, जिसको स्वामीजीने इस ग्रन्थमें "जहनु गंग" नामसे वर्णन किया है । ये आकार प्रकार में भागीरथीजीसे बड़ी है, इन का जल विचित्र है, गंगाजी में मिलते ही वह उन्हीं के रूप रंग और आकार प्रकारका बन जाता है । यहीं से भैरवघाटीकी चढ़ाई प्रारंभ होती है । यहां सिंदूरिये रंग का एक जलका स्रोत है, ऊपर भैरोंजीकी विकराल मूर्ति है, जो दर्शकोंको सान्त्वना देती है । बस, अब क्या है, अब तो बाजी मार ली, ५-६ मील दौड़ते दौड़ते चलिए, अब न चढ़ाई न उतराई, देशमें सड़की तरह कूदते चलिये । दूर से ही बरफों से ढके चाँदीके पर्वत दिखने लगेंगे । हर हर हू हू के शब्दों से घबड़ाइये नहीं । यह गौरीकुंड का शब्द है । पचासों गज नीचे एक कुंड है, उस कुंड में गंगाजी की समस्त धारा बड़े जोरोंसे शब्द करती हुई चिल्लाती और किलकारती हुई नीचे गिरती है । वह दृश्य बस वही है, उसको उपमा क्या दे ? । किंवदन्ती है कि गौरीकुण्डके नीचे एक शिवलिंग है, समस्त धारा उसी शिवलिंग के ऊपर गिरती है, इसीलिये गौरीकुण्डसे आगे के जलको श्रीरामेश्वरनाथजी ग्रहण नहीं करते । गौरीकुंड ही गंगोत्री है; यहांसे थोड़ी दूर पर श्रीगंगाजी का एक विशाल मंदिर है; इसके भीतर अष्टधातु की श्री भागीरथीजी की मूर्ति है; यमुना सरस्वती और अन्नपूर्णा भी विराजमान हैं; भगीरथीजी और श्रीशंकराचार्यजी भी उपस्थित हैं; इन्हीं गंगाजीके दर्शन करके गंगोत्रीका यात्री अपनी यात्रा की सफलता समझता है ।

यहां बड़े २ तितिक्ष त्याग और विरक्त महात्मा रहते हैं, जो गुफाओं में निवास करते हैं । हमें तीन महात्मा ऐसे मिले, जिनके दर्शनोंसे चित्त में वैराग्य हुआ । उनमें एक तो इस ग्रन्थके रचयिता महात्मा पूज्यपाद स्वामी श्रीतपोवनजी महाराज हैं,

आपका शरीर दक्षिण की तरफ का है, अंग्रेजी और संस्कृत के बड़े विद्वान हैं । स्वभाव में बिलकुल बालकपन है । बात २ पर खिलखिला कर हंसते हैं । आपकी टूटीफूटी हिन्दी इतनी सुन्दर और आनन्ददायिनी होती है कि श्रोता मंत्रमुग्धकी तरह सुनता रहता और सुनते २ अघाता नहीं । लगभग १२-१४ वर्षसे आप इधर उत्तराखंड में ही निवास करते हैं । आप जैसे त्यागी तितिक्ष विद्वान हैं, वैसे ही आप संस्कृत के सुकवि भी हैं । आपने श्रीसौम्यकाशीशस्तोत्र, श्रीबदरीशस्तोत्र आदि ३-४ सुन्दर भक्तिज्ञानमय ग्रन्थ भी बनाये हैं । अबतक श्री गंगोत्री क्षेत्र के माहात्म्य के सम्बन्ध में कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं था । स्वामीजीने इस अनुपम ग्रन्थ की रचना करके श्री गंगोत्री के यात्रियों के साथ बड़ा ही उपकार किया है । आशा है यह ग्रन्थ गंगाजी और गंगोत्रीजीके भक्तों के लिये कंठाहारका काम देगा और यात्रियों के लिये यह पथ प्रदर्शक होगा । हम ऐसे सुन्दर और उपयोगी ग्रन्थका भाषानुवाद कर के और उसके साथ इन पंक्तियों को लिखकर मैं अपने को सौभाग्यशाली समझता हूम् । श्री गंगोत्रीके पंडाओं तथा यात्रियोंसे मेरी सविनय प्रार्थना है, कि इस ग्रन्थरत्नको अधिक से अधिक प्रचार करें ।

संकीर्तन-भवन
भक्त चरण चंचगीळ । झूवी । प्रयाग )
प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जेष्ठ शु। ३ - १९६२

## ॐ मङ्गलाचरणम् ॐ

जय जय जगदम्ब ! श्रीगल श्रीजटायां
जय जय जयशीले ! जह्नु कन्ये नमस्ते ।
जय जय जलशायि-श्रीमदङ्घ्रिप्रसूते
जय जय जय भव्ये ! देवि भूयो नमस्ते ॥ १॥

त्रिपथपथिकपाथः स्रोतसा सिद्धमूर्ति-
र्दिनकर कुलभूषारत्नयत्नोदयोत्था ।
प्रणतजनसुरद्रुः पावनी पावनानां
जयति जगति गङ्गा भाग्यपूगो जनानाम् ॥ २॥

गङ्गे ! मातरनुस्मरामि सततं त्वन्मूर्तिमत्यद्भुतां
दैवीं दैवतदुर्लभां यमुनयां वाचाऽन्न सम्पूर्णया ।
मक्तेनाथ भगीरथेन भगवत्पादैश्च पदार्चकै-
र्या नित्यं समुपाश्रिता विजयते गङ्गोत्तरी सद्मनि ॥ ३॥

तुहिनशिखरिशृङ्गे दिव्यसौभाग्यसम्प-
न्महिमनि विहरन्तीं पुष्पवासे त्रिशाले ।
सुकृतिसमधिगम्ये सम्यगालीजनाली-
विलसितमलसाक्षीं नौमि गङ्गामभीक्ष्णम् ॥ ४॥

गङ्गोत्तर्यामिह गिरिगुहावेश्मनि त्वत्पदान्ते
पाद्मे पीठे स्थिरमृजु कदा संस्थितः सन् सुखेन ।
न्यस्तस्वान्तस्त्वयि शिवतनो ! देवि ! कस्तू रिकाणां
संवर्षाश्मायित मिदमहं विस्मरिष्यामि देहम् ॥ ५॥

इति मङ्गलाचरणं समाप्तम् ।

॥ ॐ तत्सत् ॥

# श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः

## श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम्

### प्रथमः खण्डः ।

महागोष्ठयां ब्रह्मणा चान्यदैवतैः ।
मुनिभिः सनकाद्यैश्च मण्डितायां महात्मभिः ॥ १॥

ब्रह्मलोक में श्रीब्रह्माजी, इन्द्रादि देवता एवं महात्मा सनक,
सनन्दन आदि मुनियोंसे सुशोभित हुई महासभामेम् ॥ १ ॥

गायन्गायंश्च माहात्म्यं गङ्गोत्तर्याः सुशोभनम् ।
आआजगामैकदाऽकस्माद्देवर्षिनारदोमुनिः ॥ २॥

एक बार गंगोत्तरीके अत्यन्त सुन्दर माहात्म्यको बारम्बार गाते हुए देवर्षि
नारदमुनि अकस्मात् गये ॥ २ ॥

विपञ्चीसुस्वरैस्तस्या माहात्म्यं कीर्तयन्मुहुः ।
भक्तितः स मुनिश्रेष्ठः प्रणमाम चतुर्मुखम् ॥ ३॥

वे, वीणाके मधुर स्वरों द्वारा गंगोत्तरीके माहात्म्यको अनुराग और राग
के साथ बारम्बार कीर्तन कर रहे थे । ऐसे मुनिश्रेष्ठ श्री नारदजीने
बड़ी ही भक्ति पूर्वक श्री ब्रह्माजीको प्रणाम किया ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच ।

किं किं कथय भद्रं त आस्यतामत्र वै मुने ।
दृष्टोऽसि बहुकालेन कुत्र कुत्राटितं त्वया ॥ ४॥

ब्रह्माजी बोलेः- हे मुनिश्रेष्ठ ! आओ ! यहां बैठो । तुम्हारी कुशल है
? कहो क्या क्या वृत्तान्त है ? मैंने बहुत समयके पश्चात् आज तुम्हें
देखा है । इतने दिनों तक कहां कहां भ्रमण करते रहे ॥ ४ ॥

नारद् उवाच ।

लोकेषु तत्र तत्राहं पर्यटन्नन्ततोऽभ्यगाम् ।
गङ्गोत्तरी हिमगिरेर्हैममस्तकसंस्थिताम् ॥ ५॥

नारद्जीने कहाः- मैं लोकोंमें इधर उधर पर्यटन करता हुआ,
अन्तमें हिमालयके हिमशिखर पर स्थित श्रीगंगोत्तरी में गया ॥ ५ ॥

दिव्यवृक्ष वनाच्छन्नां दिव्यपुष्पविशोभिताम् ।
दिव्यनादैर्विहङ्गानां सर्वतोमुखरीकृताम् ॥ ६॥

वहांकी शोभाका क्या वर्णन करू, अलौकिक वृक्ष और वनोंसे आच्छादित
है, दिव्य पुष्पोंसे शोभायमान है और अनेकों भांतिके पक्षियों के
मनोरम कलरवसे चारों ओर गुजित है ॥ ६ ॥

अहो ! विष्णुपदी साक्षाद्वतीर्णा द्युलोकतः ।
आदितो यत्र मर्त्यानां मक्षिगोचरतां गता ॥ ७॥

श्रीविष्णु भगवान के चरणसे निकली हुई, अहो ! साक्षात् श्रीगंगाजी
स्वर्गलोकसे अवतीर्ण होकर, सबसे पहले जिस स्थान पर मनुष्यों के
दृष्टिगोचर हुई थी ॥ ७ ॥

भगीरथशिला पुण्या विख्याता यत्र राजते ।
यस्यां स्थित्वा नृपश्रेष्ठस्तपश्चक्रे सुदारुणम् ॥ ८॥

जहां अति पवित्र और सर्वत्र प्रसिद्ध भगीरथशिला सुशोभित हैं,
जिसपर बैठकर नृपश्रेष्ठ श्रीभगीरथजीने अतिदुष्कर तप किया
था ॥ ८ ॥

गङ्गायां तत्र वै स्नात्वा सम्पूज्य च सरिद्वराम् ।
भक्तया नामसहस्त्रेण तुष्टाव च पुनः पुनः ॥ ६॥

मैंने जाकर वहीं पर स्नान किया और सुरसरीकी भक्ति सहित पूजा की
और गंगाकी सहस्त्र नामोंसे बारम्बार स्तुति की ॥ ६ ॥

गङ्गोत्तरात्समुत्थाय गायन्नेवमुहुर्मुहुः ।
माहात्म्यं तीर्थवर्यस्य सम्प्राप भवदन्तिकम् ॥ १०॥

और गंगोत्तरीसे चलकर सर्व तीर्थोंमें श्रेष्ठ श्रीगंगोत्तरीके
माहात्म्यको पुनः पुनः गाता हुआ ही आपके समीप आया हूँ ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच ।

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि धन्यो धन्यः पुनः पुनः ।
यत्त्वया सेवितं तीर्थं पुण्य गङ्गोत्तर मुने ! ॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले:-हे मुने ! यदि तुमने पुण्य तीर्थ गंगोत्तरीका सेवन किया है तो तुम कृतकृत्य हो गये, तुम धन्य हो । तुम्हें वारंवार धन्यवाद है ॥ ११ ॥

भगीरथतपः स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
इदं भूलोकवैकुण्ठमितिजानीहि नारद ॥ १२॥

हे नारद ! यह पवित्र पुण्यतीर्थ भगीरथका तपस्थान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, इसे तुम भूलोकका बैकुण्ठ ही समझो ॥ १२ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं क्षेत्रमन्यन्नास्तीदृशं भुवि ।
कलिदोषविमुक्तं यत् साक्षागङ्गाविहारभूः ॥ १३॥

भोग एवं मोक्ष दोनों देनेवाला इसलोकमें, इसके समान और कोई क्षैत्र नहीं है, क्योंकि कलि के कराल दोषोंसे यह मुक्त है और साक्षात् गंगाजीकी क्रीडाभूमि है ॥ १३ ॥

अनेकशतसङ्ख्यैस्तत्र तत्रोग्रलिङ्गकैः ।
अन्यैश्च विविधैर्देवविग्रहैः सम्प्रपूरितम् ॥ १४॥

इधर उधर सैकडों शिवलिगोंसे और अन्य नाना प्रकार की देव मूर्तियों सहित सुन्दरतासे परिपूर्ण है ॥ १४ ॥

अहो ! भाग्योदयस्तेषां, ये जनाः पर्युपासते ।
महापुण्यमिदं तीर्थं, शुद्ध सत्वगुणोदयम् ॥ १५॥

वास्तव में उनपुरुषोंका भाग्य उदय हुआ है, अहो ! वे धन्य हैं । जो शुद्ध सत्त्वगुणके उत्कर्ष वाले इस महान पवित्र पुण्यतीर्थका सेवन करते हैं ॥ १५ ॥

न पापं न दुराचारः, कौटिल्यं कूटकर्म च ।
न धर्मध्वजिता यत्र, न वा दुःखं महाद्भुतम् ॥ १६॥

अहो ! महान आश्चर्य है कि जिस क्षेत्रमें पाप नहीं, दुराचार नहीं, कुटिलता नहीं, छल एवं वंचनादि नहीं और किसी प्रकारका दुःख

भी नहीं है ॥ १६ ॥

तापसानां तपः स्थानं, मुनीनां मननालयः ।
भक्तानां च विरक्तानामावासो हृदयप्रियः ॥ १७॥

जो तपस्वियोंका तपस्थान हैं, भक्तों और विरक्तोंका अत्यन्त ही मनोरंजक निवासस्थान है ॥ १७ ॥

फलमूलसमृद्धं यद्गुहागह्वरशोभितम् ।
प्रशांतैकान्तगम्भीरमहो ! ब्रह्मसमाधिभूः ॥ १८॥

अहो ! जो कन्दमूल फलोंसे समृद्ध, एवं रमणीक गुफा कन्दराओंसे शोभित, अत्यन्त ही शान्त, एकान्त गंभीर और ब्रह्मसमाधिके योग्य उत्तम स्थान है ॥ १८ ॥

नारद उवाच ।

गङ्गोत्तरस्य वैशिष्टयं, किं कस्मादाह्वयस्तथा ।
संवृत्तस्तस्य कल्याणस्तन्मे ब्रूह्यात्मजन्मनः ॥ १९॥

नारदजी बोलेः- हे पिताजी ! गंगोत्तरीका माहात्म्य क्या है ? उसका ऐसा शुभ नाम किस कारणसे हुआ ? वह सब अपने प्रिय पुत्र मुझसे कहिये ॥ १९ ॥

पुण्यक्षेत्रे च तत्क्षेत्रे, शृणु लोकपितामह ।
यानि स्थानानि मुख्यानि, सेवितव्यानि वै नरैः ॥ २०॥

हे सर्वलोकोंके पितामह ! सुनिये ! पुण्यपयोधि उस क्षेत्र में जो मुख्यस्थान मनुष्यों के सेवन करने योग्य है ॥ २० ॥

तानि चाशेषतो ब्रह्मन्, श्रोतुमिच्छामि ते मुखात् ।
त्वदन्यः सर्वमेतद्वै, को वा वेत्ति विशेषतः ॥ २१॥

हे ब्रह्मन ! उन सब पुण्यस्थानोंका सविस्तर वर्णन आपके मुखसे सुनने की इच्छा करता हूँ । आपके अतिरिक्त यह सब विशेष रूपसे कौन जानता है ॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

साधु साधु त्वयापृष्टं, शृणु मे वचनं मुने ।
सङ्क्षेपतः प्रवक्ष्यामि, यत्पृष्टं गोप्यमुत्तमम् ॥ २२॥

ब्रह्माजी बोलेः- हे मुने ! तुमने बहुत अच्छा पूछा । मेरा वचन श्रवण

करो ! तुमने जो अतिश्रेष्ठ और अतिगोप्य गंगोत्तरीके माहात्म्य आदि पूछे है, उन्हें मैं संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ २२ ॥

गङ्गोत्तरस्य माहात्म्यमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन, दैवतानां च दुर्लभम् ॥ २३॥

गंगोत्तरीका माहात्म्य बडा ही अद्भुत और रोमांचकारी है । इसे अत्यन्त प्रयत्नसे गुप्त रखना चाहिए, क्योंकि यह देवताको भी दुर्लभ है ॥ २३ ॥

राजानो वाडवा वैश्याः स्त्रियश्चबहवोऽन्त्यजाः ।
कैवल्यं कामितार्थांश्च, लेभिरेऽस्य निषेवणात् ॥ २४॥

अनेकों राजा, ब्राह्मण, वैश्य, स्त्रियां और शूद्र आदि इस पुण्यतीर्थ के सेवन से अपनी २ इच्छित कामना और मोक्षको भी प्राप्त कर चुके हैं ॥ २४ ॥

गङ्गोपसेवनं नान्यद्भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धये ।
कालेयकाले तद्दोष दूषितालसचेतसाम् ॥ २५॥

और विशेष कर कलिकाल में कलि दोषोंसे दूषित जिनके मन मलिन और आलसी हैं, उनको भोग और मोक्षको सिद्धि के लिये पतित पावनी गंगाके सेवनके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है ॥ २५ ॥

गङ्गाया दर्शनं पुण्यं गङ्गायामवगाहनम् ।
गङ्गातीरनिवासश्च, गङ्गानामजपार्चनम् ॥ २६॥

श्रीगंगाजीका दर्शन महापुण्य है, गंगाजी में स्नान, गंगातीर निवास, गंगाजी का नामजप और उसका पूजन सब ही पुण्यप्रद है ॥ २६ ॥

गङ्गाम्भोवायुसंस्पर्शोनाऽपि पापः प्रशुद्धयति ।
पापानां पाप मोक्षाय, कामसिद्धयै च कामिनाम् ॥ २७॥

गंगाजल के वायुके स्पर्शसे भी पापी पुरुष पवित्र हो जाता है । पापीयोंके पाप निवृत्तिके लिये, कामनावालोंकी कामना सिद्धिके लिये ॥ २७ ॥

आर्त्तानामार्तिनाशाय, मोक्ष सिद्धयै तदर्थिनाम् ।
सर्वेषां सर्व सिद्धयै च गङ्गेव शरणं कलौ ॥ २८॥

दुःखियोंके दुःख नाश के लिये, मुमुक्षुओंकी मोक्ष सिद्धि के लिये और सबको सब प्रकार की सिद्धि के लिये, कलियुगमें केवल गंगाजी ही शरण है ॥ २८ ॥

ब्रह्मैव परमं साक्षाद्रवरूपेण धावति ।
पुमर्थकरणार्थकौ, गङ्गेति शुभसंज्ञया ॥ २९॥

साक्षात्परब्रहा ही पृथ्वी में "गंगा" इस शुभनामसे धर्म,
अर्थ, काम और मोक्ष चार प्रकारके पुरुषार्थ देने के लिए जलरूपसे
बह रहे हैं ॥ २९ ॥

उर्द्धवमूर्ध्वं विष्णुपद्या, माहात्म्यमतिरिच्यते ।
तस्मादुपर्येव यावच्छक्यं सेवेत जाह्नवीम् ॥ ३०॥

ऊपर २ गंगाजीका माहात्म्य अधिक है । इसलिए जहां तक हो सके ऊपर ही
जाकर जाह्नवीका सेवन करे ॥ ३० ॥

उत्तराखण्डमूर्द्धा यत, साक्षागङ्गोदयालयः ।
वैशिष्ट्यं क्षेत्रवर्यस्य, तस्य वक्तव्यमस्ति किम् ॥ ३१॥

जो उत्तराखण्डका मस्तक है और साक्षात् गंगाजीका उद्भव स्थान है,
उस महान् क्षेत्रके माहात्म्यका क्या वर्णन किया जाय ? उसकी प्रशंसा
जितनी भी की जाय सब थोड़ी ही है ॥ ३१ ॥

गाङ्गताहि ततो गङ्गेत्यभिधानं बभूव ह ।
सा गङ्गा भूमिगोच्चण्डाखंण्डाश्चर्यगतिक्रमा ॥ ३२॥

पहले स्वर्गलोकमें आनेपर "गंगा" इस शुभ नामसे विख्यात
हुई और वहीं गंगा मर्त्यलोकमें आकर प्रचण्ड अखण्ड और अलौकिक
गति क्रमसे आश्चर्य उत्पन्न कर रही है ॥ ३२ ॥

उत्तराभिमुखी यत्र, क्षेत्रे वहति वैष्णवी ।
ततस्तत् क्षेत्रमाख्यातं, गङ्गोत्तरमिति क्षितौ ॥ ३३॥

ऐसी विष्णुसुता श्रीगंगाजी जिस पुण्य क्षेत्रमें उत्तराभिमुखी बहती है,
इसलिए भूलोकमें वह क्षेत्र "गंगोत्तर" नामसे कहा जाता है ॥ ३३ ॥

लक्षीकृत्य हि यत् क्षेत्रं , स्वर्गङ्गा स्वर्गलोकतः ।
उत्तरत्यन्तरिक्षादीन्, तस्माद्वा तत्तथोच्यते ॥ ३४॥

अथवा स्वर्गलोकसे स्वर्गकी गंगा जिस क्षेत्रको लक्ष्य करके अन्तरिक्षादि
लोकोंको अतिक्रमण करती हुई आई है, इस कारण से उस श्रेष्ठ क्षेत्रको
"गंगोत्तर" कहते हैं ॥ ३४ ॥

उत्तरांशस्तु गङ्गाया, यद्वा यत्र विराजते ।
तस्मान्नारद तत्क्षेत्र, गङ्गोत्तरमिति स्मृतम् ॥ ३५॥

अथवा जिस क्षेत्र में गंगाजीका उत्तरभाग विराजमान है, हे नारद ! इसलिये वह क्षेत्र "गंगोत्तर" कहा जाता है ॥ ३५ ॥

यत्र गङ्गा महाभाग, नान्यः परम दैवतम् ।
तद्वा गङ्गोत्तरं नाम, पुण्यधाम प्रकीर्त्यते ॥ ३६॥

अथवा जहां महामहिमशालिनी श्रीगंगाजी प्रधानदेवता है, अन्य नहीं है, इस कारण से वह पुण्य धाम "गंगोत्तर" नामसे प्रकीर्तित है ॥ ३६ ॥

विशेषेण तु यत् क्षेत्रे, गङ्गोत्तरण साधनम् ।
भवाम्बुधेस्ततो वै तत् , क्षेत्रं गङ्गोत्तरं स्मृतम् ॥ ३७॥

अथवा जिस क्षेत्रमें श्रीगंगाजी विशेष रूपसे संसार समुद्रको पार करनेका साधन है इसीसे यह क्षेत्र "गंगोत्तर" कहा गया है ॥ ३७ ॥

स्थानान्यपि च मुख्यानि, सेवितव्यानि मानवैः ।
शृणु पुत्र महाक्षेत्रे , तत्र त्वं श्रद्धयान्वितः ॥ ३८॥

हे पुत्र ! उस महाक्षेत्र में मनुष्यों के सेवन करने योग्य मुख्य मुख्य स्थानोंको भी तुम श्रद्धायुक्त होकर सुनो ॥ ३८ ॥

भगीरथशिला या तु , त्वया दृष्टा च सेविता ।
गङ्गोत्तर्यां तु तत्स्थानं, सर्वस्मादुत्तमोत्तमम् ॥ ३९॥

जिस भगीरथशिलाका तुम दर्शन कर के आये हो,और सेवन किया है, गंगोत्तरीमें सर्व श्रेष्ठ वही स्थान है ॥ ३९ ॥

पञ्चवर्षसहस्राणि, पञ्चवर्षशतानि च ।
अत्र तेपे तपस्तीव्रं, जीर्णपर्णाशनो नृपः ॥ ४०॥

इसी स्थानमें राजा भगीरथजीने पांच हजार पांच सौ वर्ष तक सूखे पत्तोंको खाकर अत्यन्त कठिन तप किया था ॥४० ॥

तत्रैवं सुचिरं कालं, तप्यमानस्य भूपतेः ।
श्रीमद्वर्ष्मणि वल्मीकं, सजातं महदद्भुतम् ॥ ४१॥

चिरकाल तक इसी स्थानपर इस प्रकार तप करते हुए-अहो महान आश्चर्य

की बात है कि-राजाके कान्ति युक्त शरीर के ऊपर दीमक उत्पन्न हो गया था ॥ ४१ ॥

प्रचण्ड तपसा तस्य, संतुष्टोऽहं तदुग्रतः ।
प्रत्यक्षीभूय भूपाय, वरं चात्रैव दत्तवान् ॥ ४२॥

उस राजाकी इतनी उग्र तपस्यासे सन्तुष्ट होकर राजाके सामने प्रत्यक्ष आकर, मैंने उसी स्थान में उसे अभीष्ट वर दिया था ॥ ४२ ॥

कलिंदकन्यया सार्द्धं, तत्र श्रीजाह्नवी सदा ।
निवसत्यत्र वै गङ्गा, पूज्यते च यथाविधिः ॥ ४३॥

वही श्रीजमुनाजीके साथ श्रीगंगाजी सर्वदा निवास करती है और साथ ही यहां पर यथाविधि पूजित होती है ॥ ४३ ॥

गङ्गा च यमुना चैव, कन्यायुग्मं सुभासुरम् ।
नानालङ्कार संयुक्तं, मुक्तामणि विभूषितम् ॥ ४४॥

दो कन्याएँ, गंगा और यमुना अत्यन्त मनोहर, नाना भूषण से एवं मुक्तामणियोंसे विभूषित ॥४४ ॥

सितासित शुभाङ्गञ्च, चलत् कुण्डल शोभितम् ।
अंशुमत्पुत्रपुत्रस्य, बभूवाध्यक्षगोचरम् ॥ ४५॥

एक गौर एक कृष्ण, सुन्दर शरीरवाली, कानोंमें हिलते हुए कुण्डलोंसे शोभित, राजा अंशुमानके पौत्र भक्त भगीरथके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुई थी ॥ ४५ ॥

यथा पूर्वं तथाऽद्यापि, सर्वदाऽपि महात्मनाम् ।
त्पादपङ्कजानन्यभक्तानां भक्तचेटकम् ॥ ४६॥

जैसे पहले तैसे अब भी सभी समय उनके चरणकमलोंके अनन्य भक्तजनों को भक्तों की दासी ये दोनों कन्याए ॥ ४६ ॥

ददाति दर्शनं तत्र, पुण्यधाम्नि न संशयः ।
दृश्यते विचरद्रूपं, देवदारु वनान्तरे ॥ ४७॥

उस पुण्यधाममें दर्शन देती है इसमें संशय नहीं है । वहां देवदारूके पवित्र वनोंमें विचरते हुए उनके मनोहर रूप देखने में आते हैं ॥ ४७ ॥

कर्णालम्बित ताटङ्का, क्वणत् काञ्ची गुणान्विता ।
सुस्मिता पद्मपत्राक्षी स्वर्णसिंहासने स्थिता ॥ ४८॥

कानों में धारण किये हुए कर्णफूल वाली, और झनकार करती हुई करधनीसे युक्त, मधुर हास्यवाली, कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली, सुवर्णके सिंहासन पर बैठी हुई ॥ ४८ ॥

अनेक-स्त्री-परिवृता, श्वेतच्छत्रोपशोभिता ।
इन्द्रादिभिर्लोकपालैर्वीज्यमाना सुचामरैः ॥ ४९॥

अनेक देवांगनाओंसे घिरी हुई, श्वेतछत्रसे शोभित, इन्द्रादि लोक पालोंसे सुन्दर चँवर डुलाई जाती हुई ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्यजननी साक्षात्, त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभा ।
अर्कपुत्र्या समं गङ्गा, नित्यमत्र विराजते ॥ ५०॥

साक्षात् तीनों लोकों की माता, तीनों लोकोंको दुर्लभ, श्री गंगाजी, सूर्यपुत्री यमुनाजीके साथ सदाही यहां वराजती है ॥ ५० ॥

अहो ! गङ्गोत्तरी तीर्थस्यास्य माहात्म्यमद्भुतम् ।
जाह्नवीसद्मनः साक्षाद्भगीरथतपोभुवः ॥ ५१॥

अहो ! साक्षात् जाह्नवी स्थान और भगीरथकी तपो भूमि इस गंगोत्तरी तीर्थका माहात्म्य बडा ही अद्भुत है ॥ ५१ ॥

अत्र स्नात्वा तु गङ्गायामर्चयित्वा च जहनुजाम् ।
सर्वपापात् प्रमुक्तो वै, मर्त्योऽमर्त्यपदं व्रजेत् ॥ ५२॥

इस स्थानपर गंगाजीमें स्नान करके, एवं प्रेमपूर्वक जाह्नवी का पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और अमर पदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

पितृभ्यः पिण्डदानादिक्रियायां मुनि सत्तम ।
तत्स्थानं शोभनं भूमौ, सर्वेभ्यश्च विशिष्यते ॥ ५३॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! और पितरोंको पिंडदान, तर्पण आदि क्रिया करने के लिये वह पुण्य तीर्थ पृथ्वीमें सर्व तीर्थोंसे श्रेष्ठतर है ॥ ५३ ॥

न कालनियमस्तत्र, पिण्डदानादिकर्मसु ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ, क्रियां कुर्वीत मानवः ॥ ५४॥

पितरोंके लिये पिंडदान, तर्पण आदि क्रिया करने में उस स्थानमें कालका नियम नहीं है, दिन अथवा रात्रि हो मनुष्य श्राद्ध आदि क्रियाओं को कर सकता है ॥ ५४ ॥

नाम गोत्रं समुच्चार्य, यो दद्याच्छ्राद्धमत्र वै ।
स्वर्गं गच्छंति पितरस्तस्य पातकिनोऽपिवा ॥ ५५॥

इस स्थानमें नाम और गोत्रको उच्चारण करके जो श्राद्धादि करे उसके अत्यन्त पापी पितृ भी स्वर्गको जाते हैं । ५५ ॥

हविर्दानञ्च देवेभ्यो, यदत्र कुरुते नरः ।
विशिष्ट फलदं विद्धि, तच्च देवमुने शृणु ॥ ५६॥

हे देवर्षि ! सुनो ! इस स्थान में देवताओंको मनुष्य जो हवि का दान करता है, उसे वह विशिष्ट फल देता है ऐसा तुम जानो ॥ ५६ ॥

सुवर्णं कलधौतञ्च, गामन्नं पृथिवीं तथा ।
विप्रेभ्यो यत् प्रयच्छन्ति, तदत्राशु फलप्रदम् ॥ ५७॥

जो कुछ सुवर्ण, चांदी, गौ, अन्न तथा भूमि आदि का ब्राह्मणों को दान करते हैं इस स्थानपर वह दान शीघ्र ही फल देनेवाला होता है ॥ ५७ ॥

वाराणसीगयागङ्गाद्वारादिभ्योऽपि कोटिशः ।
फल तत्राधिकं विंदेद्दानादीनां न संशयः ॥ ५८॥

काशी, गया, हरिद्वार आदि तीर्थों से भी वहां दानादियों का कोटि गुण अधिक फल होता है । इसमें संशय नहीं ॥ ५८ ॥

कुत्र गङ्गोत्तरी तीर्थं, कुत्र काशीगयादयः ।
प्रचण्डद्युमणेरग्रे, खद्योतः किं प्रकाशते ॥ ५९॥

कहां तो गंगोत्तरी तीर्थ और कहां काशी, गया आदि तीर्थ ! मध्याह्नकाल के सूर्य के सम्मुख खद्योत क्या प्रकाश कर सकता है ॥ ५९ ॥

काश्यादीनि महातीर्थान्यात्मशुद्ध्यै भजंतिहि ।
मूर्तिमन्ति महाक्षेत्रं, दिवारात्रमिदं मुने ॥ ६०॥

हे मुने ! काशी, गया आदि महातीर्थ दिव्यमूर्ति धारण करके अपनी शुद्धि के लिये इस पवित्रक्षेत्रका निरन्तर दिन रात सेवन करते हैं ॥ ६० ॥

गौरीकुडं महातीर्थं, तच्छिलायास्तु पृष्ठतः ।

देवगम्यं महारम्यं, दर्शनात् पापनाशनम् ॥ ६१॥

उस भगीरथशिला के पृष्ठभागमें देवताओंसे सेवनीय,
अत्यंत रमणीक, केवल दर्शनसे ही पापों का नाश करने वाला
"गौरीकुण्ड" नामक महातीर्थ विद्यमान है ॥ ६१ ॥

केदारगङ्गा केदार-शैलशृङ्गाद्विनिःसृता ।
यत्र श्रीजह्नु, सन्तत्या, सङ्गता पुण्यदायिनी ॥ ६२॥

जहां पर केदारनाथपर्वतके शिखरप्रान्तसे निकली हुई, पुण्यदायिनी
श्री केदार गंगा, श्रीजाह्नवी गंगासे मिलती है ॥ ६२ ॥

सुदर्शनं तत्र गङ्गापाथः प्रपतनं मुने ।
गभीर निनदं नित्यं, महाश्चर्य विधायकम् ॥ ६३॥

हे मुने वहां गंभीर शब्दवाला अत्यन्त आश्चर्यकारी गंगाजी के जलका
महान् निरन्तर प्रपात ( ऊँचे पाषाण से नीचे गिरना ) अति दर्शनीय
है ॥ ६३ ॥

गौरी साक्षान्महेशानी, संवृताहि सखीजनैः ।
तत्र सङ्क्रीडते तस्मादूगौरीकुण्डं निगद्यते ॥ ६४॥

वहां सब ओर सखियोंसे घिरी हुई, साक्षात् महेश्वरी श्री गौरीजी आनन्दकी
क्रीड़ा करती हैं; इसलिये वह "गौरीकुण्ड" कहा जाता है ॥ ६४ ॥

गौरीकान्तश्च विश्वेशः, शङ्करः प्रमथाधिपः ।
स्वस्य भूतगणैर्युक्तस्तत्र नित्यं विराजते ॥ ६५॥

सर्व ब्रह्मांड के ईश्वर, गौरी के पति, प्रमथगणों के नायक श्री
शंकरजी भी अपने भूतगणों के साथ वहाँ सदैव निवास करते हैं ॥ ६५ ॥

सेतृतर्पणमेतस्मिन्, पुण्यतीर्थे विधीयते ।
तद्विधि सम्प्रवक्ष्यामि, शृणु मे श्रद्धयान्वितः ॥ ६६॥

इस महान् पुण्यतीर्थ में सेतुतर्पण नामकी पुण्यक्रिया की जाती है । उसकी
विधि सम्यक् प्रकार से कहता हूम् । श्रद्धापूर्वक मेरे बचन सुनो ॥ ६६ ॥

नारिकेलत आनीय, वालुकाः सेतुबंधनात् ।
अभ्यर्च्य विधिवत्तत्र, रुद्रीपाठादिना मुने ! ॥ ६७॥

हे मुने ! रामेश्वर से सेतुबंध ( धनुषकोटी ) स्थान की रेती नारियल

में लाकर वहां विधि पूर्वक रुद्रीपाठ आदि सहित पूजन करने के अनंतर ॥ ६७ ॥

कुण्डेतत्र समर्प्यते, श्रद्धया तापसोत्तमैः ।
सेतुतर्पणमेतद्वै, महापुण्य फलप्रदम् ॥ ६८॥

उसी गौरी कुडमें श्रेष्ठ तपस्वी जन श्रद्धाके साथ उसे समर्पण करते हैं । यह सेतु तर्पण नामक क्रिया महापुण्य फल देने वाली है ॥ ६८ ॥

यथोक्तविधिना तात ! यः कुर्यात् सेतुतर्पणम् ।
निष्कामश्चेत् पुनर्जन्म, तस्य न स्यान्न संशयः ॥ ६९॥

हे पुत्र ! जो कोई पूर्वोक्तविधि से सेतुतर्पण करेगा, यदि निष्काम हो तो उसका पुनर्जन्म अवश्य नहीं होगा । इसमें संशय नहीं ॥ ६९ ॥

सकामश्चेत् सद्य एव, वाच्छितार्थमवाप्नुयात् ।
धन्यो धन्यः स मर्त्योयः सेतुं तर्पयतीदृशम् ॥ ७०॥

और यदि सकाम हो तो शीघ्र ही अपने अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होगी । जो इस प्रकार उस सेतुका तर्पण करते हैं, वे मनुष्य अत्यंत धन्य हैं ॥ ७० ॥

अन्यच्च कथयिष्यामि, शृणु मे श्रद्धया मुने ! ।
गङ्गोत्तर्याश्च यो गङ्गातोयमानीय नारद ॥ ७१॥

हे मुने ! एक बात और भी कहता हूम् । श्रद्धापूर्वक मेरे वचन सुनो ! हे नारद ! गंगोत्तरी से गंगा जल लाकर, ॥ ७१ ॥

बहिरन्तः शुचिर्नित्यं, श्रद्धावान् संशितव्रतः ।
पादचारी सदाचारी, पृथ्वीशायी तथाल्पभुक् ॥ ७२॥

सर्वदा बाहर भीतर से अत्यंत शुद्ध, श्रद्धावान् , तीक्ष्ण व्रतवाला पैदल चलनेवाला, उत्तम आचरणवाला, पृथ्वी पर सोनेवाला को अल्प भोजन करने वाला होकर ॥ ७२ ॥

रामेश्वरे महाक्षेत्रे, रामचंद्रेण यत्पुरा ।
स्थापितं शिवलिङ्गं वै, पूजितं सर्व दैवतैः ॥ ७३॥

प्राचीन काल में महाक्षेत्र रामेश्वरमें श्री रामचन्द्रजी के करकमल से स्थापित और सर्व देवताओं से पूजित जो शिवलिंग है, ॥ ७३ ॥

अभिषेकेण तल्लिगमभ्यर्चयति मानवः ।

विधिवत् स फलं तस्य, शिवसायुज्य मृच्छति ॥ ७४॥

उस शिवलिंगका जो मनुष्य, अभिषेक पूर्वक यथाविधि पूजन करता है, वह उसके फल स्वरूप शिवजीकी सायुज्यमुक्त पाता है । ७४ ॥

यज्ञभूः पाण्डु पुत्राणामुमाकुण्डस्य पृष्ठतः ।
पावनी पुरुपुण्याढया, दर्शनाद्दुःख नाशिनी ॥ ७५॥

गौरीकुंडके पीछे अतिपवित्र, महापुण्यदायिनी, दर्शनमात्रसे अनेक दुखोंके नाश करनेवाली, पांडवोंकी यज्ञभूमि है । ( इसको देशभाषामें "पट्टाङ्गना" कहते हैं ) । ७५ ॥

गोत्रहत्यासमुत्पन्न पापशान्त्यै तु पाण्डवाः ।
द्वैपायनज्ञयाऽभिज्ञाः, प्रापुस्त्रिपथगोत्तरम् ॥ ७६॥

कुटुम्बकी हत्यासे उत्पन्न हुए पापकी निवृत्ति के लिए श्रीवेद व्यासजीकी आज्ञासे बुद्धिमान पांडवगण गंगोत्तरीमें आये थे ॥ ७६ ॥

तत्र गत्वा दैवयज्ञश्चात्र निर्वर्तितो महान् ।
यथाविधानमास्तिक्य बुद्धया द्विजसहायकैः ॥ ७७॥

और वहां जाकर, उन्होंने ब्रह्मर्षियों की सहायता से श्रद्धापूर्वक विधिवत् इसी जगह महान देवयज्ञ संपादन किया था ॥ ७७ ॥

अहो ! रम्यमिदं स्थानं, विशालमनुपद्रवम् ।
मृत्कुक्षौ तन्मखोच्छिष्टं, भस्म चाद्यापि दृश्यते ॥ ७८॥

अहो ! यह स्थान महान सुन्दर, विशाल और निरुपद्रव हैं । वहांकी मिट्टके भीतर अब भी उस यज्ञका अवशिष्ट भस्म देखने में आता है ॥ ७८ ॥

एकादशानां रुद्राणामावासोच्चशिलोच्चयात् ।
निपतन्तीं पश्य गङ्गां, रुद्रपूर्वां समीपतः ॥ ७९॥

उसके समीप एकादश रुद्रोंके निवासस्थान अत्यन्त ऊंचे पर्वतसे ( जिसे देश भाषा में "रुद्रगैरु" कहते हैं ) निकली हुई, "रुद्र गंगा" नामक मनोहर धारा को देखो ! ॥ ७९ ॥

विषयासङ्गि चित्तं वै कथमुन्नतिमाप्नुयात् ।
अक्लिष्ट वर्त्मना मन्दं रोहतीवाधिरोहणीम् ॥ ८०॥

जैसे प्रयास विना धीरे धीरे क्रमशः सीढी चढ़ जाता है, वैसे

ही विषयों में आसक्त हुआ चित्त मन्द मन्द किस प्रकार उन्नति के प्राप्त होगा ॥ ८० ॥

इति सञ्चिन्त्य तीर्थानां दैवतानाञ्च कल्पनम् ।
तत्र तत्र कृतं लोकगुरुभिस्तवदर्शिभिः ॥ ८१॥

तत्त्व को जानने वाले, लोकों के प्राचार्यों द्वारा इस प्रकार विचार् करके उसी उसी स्थान में तीर्थ एवं देवताओं की कल्पना की गयी है ।

आसेवितानि विधिवत् सर्वाण्येतानि तैः स्वयम् ।
जोषयद्भिरहो लोकाँल्लोक सङ्ग्रहकारिभिः ॥ ८२॥

लोक संग्रह करने वाले, लोगों की उनमें प्रवृत्ति कराने वाले ऋषि लोग अपने स्वयं ही उन सबका सेवन भी विधि पूर्वक किये ॥ ८२ ॥

अग्निकर्मसु नष्टेषु नष्टे च तपसि क्षितौ ।
कथं वा दुर्बलो मर्त्यः प्रेयः श्रेयश्च साधयेत् ॥ ८३॥

अग्निहोत्रादि कर्म नष्ट हो गये । पृथ्वी में तप भी लुप्त हो गया । बलहीन मनुष्य किस प्रकार भोग और मोक्ष को प्राप्त करेगा ॥ ८३ ॥

निष्कामसेवया देव्याः सञ्जाता पुण्यसंहतिः ।
निबर्हयति वै पापं बहुजन्मसु सञ्चितम् ॥ ८४॥

श्री गंगाजी की निष्काम सेवा से महान पुण्य समूह उत्पन्न होते हैं, और अनेक जन्मों में इकठ्ठे किये पापों को एकदम नष्ट कर देते हैं ॥ ८४ ॥

रागादि चित्तदोषाश्च क्षीयन्ते तदनन्तरम् ।
दोषक्षये च भगवद् भक्ति ज्ञानं च जायते ॥ ८५॥

राग, द्वेष आदि चित्त के सब दोष भी उसके पश्चात् क्षीण हो जाते हैं । एवं सब दोष भी नष्ट होने पर निर्मल हुए मन में ईश्वर भक्ति तथा ज्ञान भी उदित होते हैं ॥ ८५ ॥

अनायासेन मर्त्यानामनर्हाणाञ्च नारद ।
ईश-भक्तिश्च मुक्तिश्च क्षिप्रमेवं प्रसिध्यति ॥ ८६॥

इस प्रकार हे नारद ! अयोग्य मनुष्यों को भी क्लेश विना ही ईश्वर भक्ति और मुक्ति भी जल्दी सिद्ध हो जाती हैं ॥ ८६ ॥

सर्व तीर्थ तपो योग स्वाध्यायार्चनकीर्तनैः ।

निःश्रेयसफलं मुख्यमन्यदापातिकं फलम् ॥ ८७॥

जो जो तीर्थ, तप, योग, स्वाध्याय, पूजन और कीर्तन इत्यादि हैं, उन सबका भी मोक्ष प्राप्ति ही परम और चरम फल है, अन्य सब फल भी तात्कालिक हैं ॥ ८७ ॥

गुड जिह्विकया नूनं बालवन्मन्दबुद्धयः ।
तत्तत्फलैः प्रवर्त्यन्ते तत्तदुत्तमकर्मसु ॥ ८८॥

जैसे कडवी दवाई खिलाने के लिये बालकों को पहले गुड दिया करते हैं, वैसे ही अविवेकी जनों को उसी उसी सांसारिक फल के द्वारा एकैक श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्ति कराते हैं ॥ ८८ ॥

सर्वमापातमधुरमहो सांसारिकं फलम् ।
अनित्यं दुःखसम्भिन्नं सुबुद्धिभिरकाङ्क्षितम् ॥ ८९॥

सांसारिक जितने भोग हैं, सारे अविचार काल में ही प्रिय लगते हैं; सब अस्थिर हैं, दुःख से मिश्रित हैं; विवेकी जन जिनकी कांक्षा न ही करते हैं ॥ ८९ ॥

तीर्थाटनादि सकलं कृच्छ्रसाध्यं सुकर्मयत् ।
कः कुर्यात्क्षणिकार्थानां कृते मूढजनेतरः ॥ ९०॥

तीर्थाटन इत्यादि कष्टसाध्य जो नाना सत्कर्म हैं, मृढ जन से अन्य कौन क्षणिक विषयोंके लाभ के लिये उसका अनुष्ठान करेगा ॥ ९० ॥

ईश्वर प्रीतिरेवात्र पुण्यकर्मफलं नृणाम् ।
नान्यद्भवतु भव्यानां भवसङ्कट मोचनी ॥ ९१॥

इस संसार में सुबुद्धि पुरुषों के लिये पुण्य कर्मों का फल संसार संकट से विमोचन करने वाली ईश्वर प्रीति ही होना चाहिये; अन्य न हीम् ॥ ९१ ॥

ईश्वरः सर्व जगतो भगवान् भक्त वत्सलः ।
सेव्योऽहं ननु संसारी जीवस्तदुपसेवकः ॥ ९२॥

सर्व जगत के ईश्वर, भक्तवत्सल भगवान सेवा करने योग्य हैं; मैं संसारी जीव उनका तुच्छ सेवक हूँ ॥ ९२ ॥

इति द्वैतधिया सम्यगुपक्रम्येश सेवनम् ।

सर्वमीश इति प्रज्ञां निर्द्वैतां साधयेद् बुधः ॥ ९३॥

इस प्रकार द्वैत बुद्धि से सश्रद्ध, सभक्तिक, ईश्वर भजन का प्रारम्भ करके, अनन्तर "सब ईश्वरमय" इस प्रकार की अद्वैत बुद्धि का बुद्धिमान जन अभ्यास करें ॥ ९३ ॥

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानं साक्षान्मोक्षैक साधनम् ।
हन्त हन्तेह जन्तूनां सहसा कस्य सिध्यति ॥ ९४॥

मुक्ति के अनन्य साधन, "सब ब्रह्म है" इस प्रकार का प्रत्यक्ष अनुभव, अहो इस संसार में प्राणियों में एकदम किस को सिद्ध होता है ? ॥ ९४ ॥

सर्वं ब्रह्मेत्यखण्डा धी यावन्नोदेति कुत्रचित् ।
इदं ब्रह्मेति बुद्धिर्या सखण्डा सा विधीयते ॥ ९५॥

"सब ब्रह्म है" इस प्रकारको अपरिच्छिन्न ब्रह्मबुद्धि जब तक उदित नहीं होती, तब तक किसी आलंबन में "यह ब्रह्म है" इस प्रकार की परिच्छिन्न जो ब्रह्म बुद्धि है, उसका विधान किया जाता है ॥ ९५ ॥

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च सचराचरम् ।
बहुजन्म कृताभ्यासादित्येषा जायते मतिः ॥ ९६॥

चर और अचर के सहित जो कुछ यह संपूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है, ईश्वरमय है, इस प्रकार की यह बुद्धि-ज्ञान-बहु जन्मों में किए अभ्याससे ही उत्पन्न होती है ॥ ९६ ॥

धुनीं वा ग्रावमूर्तिं वा स्थूलां नोपासितुं क्षमः ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं तत्त्वमैश्वरं वा स्मरेत् कथम् ॥ ९७॥

स्थूलतर किसी नदी की, अथवा पाषाण मूर्तिकी उपासना करने में जो समर्थ नहीं, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर ईश्वर तत्त्वका वह किस प्रकार स्मरण करेगा ॥ ९७ ॥

प्रकृत्या सुन्दरं स्थानं वस्तु चावर्जकं प्रभोः ।
दर्शनार्हण चिन्तासु श्रेष्ठमालम्बनं मतम् ॥ ९८॥

प्रकृति से ही सुन्दर स्थान, ऐसे अन्य मनोहर पदार्थ भी परमात्मा के दर्शन, पूजन, तथा चिन्तन में श्रेष्ठ और ऋषिमुनियों के

सम्मत आलंबन है ॥ ९८ ॥

नाना विषय विक्षिप्तं दुष्टचित्तं मनागपि ।
ईश्वराभिमुखं कुर्यादिति तीर्थादि कल्पना ॥ ९९॥

नाना प्रकार के विषयों का भोग करके विक्षिप्त हुए, रागादि दोषों से दूषित चित्त को थोड़ा भी ईश्वर के अभिमुख लगावे, इस प्रयोजन के लिए तीर्थ आदियों की कल्पना हुई है ॥ ९९ ॥

साकारमीशरूपं यत् परोक्षमिति दुर्ग्रहम् ।
अतिमन्दधियां किञ्चित् प्रतीकत्वेन कल्प्यते ॥ १००॥

ईश्वर का जो साकार रूप है, परोक्ष होने से उनका भी चिन्तन आदि करना कठिन होता है । इसलिए अति मन्द बुद्धियों के लिए प्रतिक ( आलंबन ) रूप से किसी वस्तु की कल्पना की जाती है ॥ १०० ॥

येन केन प्रकारेण विष्वग्गामि दृढं चलम् ।
चित्तमेकत्र संरुन्ध्यादनुक्षणविकल्पकम् ॥ १०१॥

जिस किसी प्रकार से इधर उधर दौड़ने वाले, दृढ, चञ्चल और क्षण २ नाना कल्पना करने वाले चित्त को एक स्थान में सम्यक् निरोध करे ॥ १०१ ॥

असद्वृत्तिपरं चित्तं कुर्यात् सद्वृत्तियत्नतः ।
ततो निर्वृत्तिकं कुर्यादिति तत्त्वगतिक्रमः ॥ १०२॥

दुष्कार्यों में लम्पट चित्त को यत्न करके भी सद्वृति वाला बनावे; पश्चात् सद्वृत्ति का भी निरोध करके वृत्तिशून्य बनावे; इस क्रम से परमार्थ तत्त्व की प्राप्ति होती है ॥ १०२ ॥

ईश्वरो वेत्ति विश्वात्मा सर्वां सर्वस्य भावनाम् ।
यादृशी भावना तादृक् फलञ्चापि प्रयच्छति ॥ १०३॥

सर्वात्मा परमेश्वर सबकी सब प्रकार की भावना को जानते हैं; जिस प्रकार की भावना है, उस प्रकार का फल भी दे देते हैं ॥ १०३ ॥

तीर्थ सेवनतः केचिद्रामकृष्णाद्युपासया ।
जपेन तपसा चान्ये प्रार्थना कीर्तनादिभिः ॥ १०४॥

कोई तीर्थ सेवा से, अन्य कोई राम, कृष्ण आदियों की उपासना से, और

अन्य जप से, तप से तथा प्रार्थना, कीर्तन इत्यादियों से ॥ १०४ ॥

स्वाध्यायाभ्यासतः केचिच्छास्त्र चिन्ताक्रमेण च ।
प्राणायामेन चाप्यन्ये ध्यानयोगेन चापरे ॥ १०५॥

और कोई स्वाध्याय के अभ्यास से, कोई अन्य शास्त्रों के चिन्तन के द्वारा, और अन्य प्राणायाम से, एवं इतर कोई ध्यान योग से भी ॥ १०५ ॥

कर्मानुष्ठानतः केचिद् दान सेवादिभिः परे ।
इत्थमीश्वरमाराध्य निष्कामाः शोधयन्ति हृत् ॥ १०६॥

कोई कोई यज्ञ,याग आदि कर्मों के अनुष्ठान से, और अन्य द्रव्य दान, लोक सेवा इत्यादियों से, इस प्रकार निष्काम साधक जन परमेश्वर की आराधना करके अपने चित्त का शोधन करते हैं ॥ १०६ ॥

विकल्पशत विक्षिप्त सशुद्धं चित्तमञ्जसा ।
निर्विकल्पपदोपान्तं गन्तुमर्हेत् कथं प्रभोः ॥ १०७॥

सैकडों विकल्पों से विक्षिप्त, तथा अशुद्ध चित्त एक दम ईश्वर के निर्विकल्प स्वरूप के पास पहुंचने में किस प्रकार समर्थ होगा ॥ १०७ ॥

निर्मलं शुद्धमेकाग्रं विचारनिपुणं मनः ।
वेत्ति सम्यक् परं तत्त्वमवाङ् मनस गोचरम् ॥ १०८॥

राग, द्वेष आदि मत से रहित, शुद्ध, एकाग्र और विचार समर्थ मन ही वाक् और मन के अगोचर परम तत्त्व को साक्षात् अनुभव करता है ॥ १०८ ॥

इति श्री गङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्ये
श्री गङ्गोत्तरगौरीकुण्डादि तीर्थवर्णनं नाम
प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

## अथ द्वितीयः खण्डः ।

नारद उवाच ।

गङ्गोत्तरादितीर्थानां माहात्म्यमतुलाद्भुतम् ।
अतिमात्रनिगूढं यत् , त्वत्कृपातः श्रुतं मया ॥ १॥

नारदजी बोलेः- गंगोत्तरी आदि तीर्थों का, अनुपम अद्भुत और अत्यंत

गूढ जो माहात्म्य है, उसे आपकी कृपा से मैंने सुन लिया ॥ १ ॥

स्थानानामपि चान्येषां, प्रकृतक्षेत्रवर्तिनाम् ।
सुतवात्सल्यतः श्रीमन् ! वैशिष्ट्यं श्रावय प्रभो ! ॥ २॥

अब, हे श्रीमन् ! हे प्रभो ! गंगोत्तरीक्षेत्रमें स्थित अन्य स्थानोंका भी माहात्म्य आप पुत्रस्नेह से मुझे सुनाइये ॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच ।

अन्यान्यपि सुपुण्यानि, स्थानानि शृणु नारद ! ।
दर्शनेन विनश्यंति, महापाप शतान्यपि ॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले :- हे नारद ! तुम अतिपुण्यदायक अन्य स्थानोंको भी सुनो ! जिनके दर्शनसे सैकड़ों महापापोंका भी नाश हो जाता है ॥ ३ ॥

प्रियोऽसि मे तनूजोऽसीत्युच्यते गोप्यमुत्तमम् ।
त्रैलोक्यदुर्लभं तेषां, वैशिष्ट्यं शिष्यहर्षणम् ॥ ४॥

तुम तो मेरे प्रिय हो; पुत्र हो; इसलिये त्रिलोकको भी दुर्लभ, गूढ, अति उत्तम और शिष्ट पुरुषोंको आनन्द देनेवाला उन स्थानोंका माहात्म्य कहता हूम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मीवनं महालक्ष्म्याः क्रीडनोपवनं मुने ! ।
पुरतो भ्राजते तत्र, फलवृक्षविराजितम् ॥ ५॥

हे मुने ! इसके आगे महालक्ष्मीका क्रीड़ास्थान, अनेक प्रकार के फलोंवाले वृक्षों से शोभित, लक्ष्मीवन विराजमान है (इसे गंगा बगीचा भी कहते हैं) ॥ ५ ॥

देवीगङ्गा सङ्गमश्च, तत ऊर्ध्वं समीपतः ।
दिवौकसां स्थानमेतन्नास्ति मर्त्यसमागमः ॥ ६॥

उसके आगे पास ही श्री भागीरथीगंगा के साथ देवीगंगाका संगमस्थान है । यह देवताओंका स्थान है । मनुष्योंका समागम वहां दुर्लभ है । ( इसे देश भाषामें "देवघाट" कहते हैं ) ॥ ६ ॥

ततोऽपि दिशि पूर्वस्यां, भूर्जवासोऽति सुन्दरः ।
ऊर्जस्वलैर्भूजवृक्षैरापूर्णं विस्तृतं वनम् ॥ ७॥

उसके भी पूर्वदिशा में अत्यन्त सुन्दर "भुर्जवास" है । यह

भोजपत्र के उज्ज्वल और ऊर्जित वृक्षों से भरा हुआ रमणीक और विशाल वन है । ( यह स्थान "भोजवासा" नाम से प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

देवर्षि यक्ष गंधर्व सिद्ध चारण सेवितम् ।
अहो ! धन्यः स मर्त्योयः स्थानमेतत् प्रपश्यति ॥ ८॥

अहो ! जो मनुष्य, देव, ऋषि, गंधर्व, सिद्ध और चारणों से सेवित इस दिव्य स्थान का दर्शन करते हैं, वे अतिधन्य हैं ॥ ८ ॥

पुष्पवासो विशाला भूस्तदूर्ध्वं मुनि पुङ्गव ! ।
दिव्यानां बहुपुष्पाणामुद्यानं विद्धि नारद ! ॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! भोजवासा के आगे "पुष्पवास" नामक विशाल मैदान है । हे नारद ! उसे नाना प्रकार के अलौकिक और सुन्दर पुष्पों का बडा बगीचा जानो । (देशभाषा में इसे "फूलवासा" कहते हैं) ॥ ९ ॥

तत्र श्री गोमुखंस्थानं, साक्षागङ्गावतार भूः ।
ऋषिभिर्बहुधा गीतं, पुण्यात् पुण्यतरं भुवि ॥ १०॥

वहां साक्षात् गंगाजी की अवतार भूमि, ऋषिमुनियों द्वारा नाना प्रकार से कीर्तित, पृथ्वीभर में पवित्र से भी अत्यंत पवित्र श्री "गोमुख" नामक स्थान है ॥ १० ॥

शैलशृङ्गैर्महोच्छ्रायैर्वेष्टितं हिमशोभितैः ।
द्युलोक निकटस्थं वै, द्युलोकिभिरधिष्ठितम् ॥ ११॥

जो अत्यन्त ऊंचे बर्फसे ढंके हुए, विशाल पर्वत शिखरोसे आवृत्त, देवलोकके समीपवर्ती और देवताओं से अधिष्ठित है ॥ ११ ॥

तत्र प्रालेयसङ्घात भूषिते भुविभूषणे ।
गोमुखे गोमुखाकार महातुहिन गह्वरात् ॥ १२॥

बर्फके समूह से भूषित और भूमिके विभूषण उस गोमुख स्थानमें गौके मुखके सदृश बर्फ की महान गुफासे ॥ १२ ॥

निर्गच्छति महावेगा, गङ्गा सुरतरङ्गिणी ।
पावनी पावनार्थाय, पृथ्वीलोक निवासिनाम् ॥ १३॥

पुण्यवती, सुरनदी श्री गंगाजी भूलोकके निवासियों को पावन करने के

लिये महान वेगवती होकर निकल रही है ॥ १३ ॥

देवखातविले तत्र, दुर्गादुर्गतरेऽपि यः ।
गत्वा तु जाह्नवीतोये, बिधिवत् स्नानमाचरेत् ॥ १४॥

दुर्गम से दुर्गम होनेपर भी, जो उस देवनिर्मित गुफामें ही जाकर गङ्गाजलमें विधिपूर्वक स्नान करते हैं ॥ १४ ॥

अवश्यं तस्य वै पुत्र ! पुनर्जन्म न विद्यते ।
नात्र शङ्का विधातव्या, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ १५॥

हे पुत्र ! अवश्यही उनका पुनर्जन्म नहीं होता । इसमें तनिक भी संदेह करना योग्य नहीं । मैं प्रतिज्ञा के साथ कहता हूं । क्योंकि तु मुझे अति प्रिय हो ! ॥ १५ ॥

गोमुख्यां तत्र विख्याते, सूर्यकुण्डे निमज्जति ।
नीलनीरदवर्णाढये, यस्स सूर्यवदुज्ज्वलेत् ॥ १६॥

इसी गोमुख स्थान में जो पुरुष नीलमेघके समान रंगवाले विख्यात सूर्यकुण्ड में स्नान करते हैं; वह सूर्य के सदृश कान्ति वाले होते हैं ॥ १६ ॥

तत ऊर्ध्वं तु भूमीद्धा, मर्त्य सञ्चार दूरगाः ।
आच्छन्नाः संततस्थायि घनोत्तुङ्गमहाहिमैः ॥ १७॥

उसके आगे पर्वत समूह सदा स्थिर रहनेवाले अति सघन और ऊंचे महान बर्फ से ढके रहते हैं, इसलिये वे मनुष्यकी गति से रहित हैं ॥ १७ ॥

गोमुखीतो विशालापूर्नातिदूरे विराजते ।
तत्रायं गमने मार्गः सिद्धानां चामृतांधसाम् ॥ १८॥

गोमुखीस्थानके पास ही बदरीपुरी विराजमान है । वहां जाने के लिये यह सिद्ध और देवताओंका मार्ग है, यानी मनुष्यकी गति रहित उन पर्वतशिखरों द्वारा सिद्ध और देवता लोग जाते हैं ॥ १८ ॥

नारद उवाच ।

माहात्म्यं जाह्नवीजन्मभुवः श्रीगोमुखस्य यत् ।
लोकेश कृपया किञ्चिद् विस्तरेण वद प्रभो ! ॥ १९॥

नारदजी बोले :- श्रीगंगाजी की जन्मभूमि, श्रीगोमुखका जो माहात्म्य

है, उसे हे लोकों के स्वामी ! हे प्रभो ! कृपा करके कुछ विस्तार पूर्वक कहिये ! ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु मे सम्प्रवक्ष्यामि, यत्पृष्टं प्रियदर्शन ! ।
वैशिष्टयं गोमुखीयं वै, गोप्यमेतत् सनातनम् ॥ २०॥

हे प्रियदर्शन ! तुमने जो गोमुखका माहात्म्य पूछा है, उसे मैं सम्यक् प्रकारसे कहता हूम् । मेरे वचन सुनो ! यह सनातन रहस्य गुप्त रखने योग्य है ॥ २० ॥

क्रीडारङ्गंश्रियः साक्षाद्, गोमुखी लेख संस्तुता ।
गोवक्त्रभिर्हिमश्रावच्छिद्रतोऽन्वर्थनामिका ॥ २१॥

देवताओं द्वारा कीर्तित गोमुखीस्थान, साक्षात् लक्ष्मीकी क्रीडाभूमि और गौके मुखके समान हिमपाषाणकी गुफा होनेसे अनुरूप नामवाला है ॥ २१ ॥

श्रीशैलहिमकूटैर्या, भासिता सर्वतो दिशि ।
स्वयं च सुभगोत्तुङ्ग हिमानीकृतभूषणा ॥ २२॥

जो सब ओरसे श्रीशैल नामक पर्वतके हिमशिखरों से प्रकाशित है; और स्वयंसुन्दर एवं ऊंचे हिम समूहों का आभूषण किये हुए है ॥ २२ ॥

तथाह्नि कलधौताभैः सायञ्च कनकप्रभैः ।
प्रहर्षयति या चित्तं, पर्वताग्रैरलौकिकैः ॥ २३॥

और जो दिन में चांदीके प्रकाशवाले और सायंकाल में सुवर्ण के प्रकाश वाले, दिव्य पर्वत शिखरों से चित्त को अत्यन्त आह्लादित करता है ॥ २३ ॥

किमयं तपनीयाद्रिः, किंवा रजत पर्वतः ।
इति संदेहतो यत्र, बाढं मुह्यति मानवाः ॥ २४॥

क्या यह सोनेका पर्वत है, या चांदी का पर्वत ? इस प्रकार के महान सन्देहसे जहां मनुष्य अत्यन्त मोहित हो जाते हैं ॥ २४ ॥

अहो ! दिव्या दिव्यकान्तिच्छटाच्छन्न दिगंतरा ।
भ्राजते साऽचलाधीश मूर्धोत्तंसमहामणिः ॥ २५॥

अहो ! जो दिव्य और हिमालय के शिरोभूषणका अमूल्य रत्न और अपने अलौकिक कान्ति पुंजसे दिशाओं के मध्य को व्याप्त किए हुए अत्यन्त दीप्यमान

है ॥ २५ ॥

देवसेव्यञ्च तत्स्थानं दैवतानां च दुर्लभम् ।
महापुण्य महोपुण्यपूरुषैरवलोकितम् ॥ २६ ॥

अहो ! वह स्थान देवताओं द्वारा सेवनीय, देवताओं को भी दुर्लभ और महापुण्य जनक है; जिसे कि पुण्यात्मा लोगोंने अवलोकन किया है ॥ २६ ॥

अगहनगहनं वै, लताविटपिवर्जितम् ।
प्रशांतमतिगम्भीरं विशालं ग्राव सङ्कुलम् ॥ २७॥

वह वनों से दुर्गम नहीं है अर्थात् वन रहित है और लता बृक्षों से रहित है । प्रशांत और अत्यन्त गम्भीर है । विशाल है और पत्थरों से अति संकीर्ण है ॥ २७ ॥

निकटस्थ बृहच्चर्मिवनशोभाविशोभितम् ।
पत्रिभिः सुस्वरैर्नाना रूपवर्णैश्च मण्डितम् ॥ २८॥

समीपमें ही स्थित महान भोजपत्रके वनकी शोभासे शोभायमान, तथा मधुर स्वरवाले और नाना प्रकार एवं नाना रंगवालें मनोहर पक्षियोंसे अलंकृत है ॥ २८ ॥

कृष्णरक्तैः श्वेत पीतैः पुष्पैर्दिव्यमनोहरैः ।
इन्द्राणी केश भूषाभिः समाच्छन्नं समन्ततः ॥ २६॥

इन्द्राणी के केशोंके भूषण, तथा दिव्य, मनको हरने वाले श्याम, लाल, श्वेत और पीले पुष्पोंसे सर्वत्र आच्छादित है ॥ २९ ॥

कस्तुर्याद्यैर्विचित्रैश्च, मृगभेदैरनद्भुतैः ।
सर्वदाऽध्युषितं दिव्यैः स्वच्छन्द मकुतोभयम् ॥ ३०॥

कस्तुरीमृग, वरड आदि नाना प्रकार के अलौकिक और अति अद्भुत जंगली पशु, स्वतन्त्र और भय रहित होकर वहां सभी समय निवास करते हैं ॥ ३० ॥

अहो तत्रत्य सुषमां, कोवा वर्णयितुं प्रभुः ।
इन्द्रोप्यक्षिसहस्त्रेण, यां विलोक्य न तृप्यति ॥ ३१॥

अहो ! वहांकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन करने में कौन समर्थ है ? जिसको अपने सहस्त्र नेत्रों से देखकर इंद्र भी तृप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥

नैतत् केवल मक्षाणां, सदैवाह्लादकं मुने ! ।
सर्वपुण्यमहातीर्थमूर्द्धभूषेति विद्धि तत् ॥ ३२॥

हे मुने ! यह स्थान केवल सदा इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाला ही नहीं, किन्तु उसे सर्व महान् पुण्य तीर्थों का शिरो भूषण जानो ! ॥ ३२ ॥

सकृदेवात्र गमनाद्दर्शनात् सर्व किल्बिषम् ।
समूलं विलयं याति, वाञ्छितार्थमवाप्नुयात् ॥ ३३॥

एकवार भी इस स्थान पर जाकर दर्शन करनेसे सब पाप समूल विनष्ट हो जाते हैं और शीघ्र ही अभीष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥

यदि तत्रत्यगङ्गाम्भोबिन्दुमेकमपि स्पृशेत् ।
यत्रकुत्राऽपि निवसन् , पुमान् याति सुरालयम् ॥ ३४॥

यदि वहां के गंगाजल का एक बिन्दु भी स्पर्श करे तो जहां तहां कहीं भी निवास करने वाला मनुष्य भी देवलोकको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

हरिणापि हरेणापि, मया मघवतापि च ।
असकृत् सेवितं तीर्थं, श्रद्धेयं श्रद्धया मुने ! ॥ ३५॥

हे मुने ! स्वयं विष्णुने, शिवजीने, इन्द्रने और मैंने भी श्रद्धा करने योग्य इस तीर्थका श्रद्धापूर्वक अनेक बार सेवन किया है ॥ ३५ ॥

अहो ! मुनिवरास्तत्र, गत्वा ब्रह्मविचिन्तने ।
मज्जंति दिव्यसुषमा समाकृष्टधियो बलात् ॥ ३६॥

अहो ! उत्तम मननशील पुरुष वहां जाकर, प्रकृतिकी उस दिव्य अनुपम शोभासे हठात् अत्यन्त प्रकृष्टचित्त होकर ब्रह्मचिन्तन में निमग्न हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

हेतुज्ञानं फलज्ञानात्, परीक्षकमतं खलु ।
तथा च प्राकृताभिख्यादर्शनाद्ब्रह्मसंस्मृतिः ॥ ३७॥

कार्य के ज्ञानसे उसके कारणकी स्मृति होती है; यह दार्शनिकों का मत है । इसी प्रकार प्राकृतिक कान्ति के दर्शन से उसके कारण ब्रह्मकी स्मृति होती है ॥ ३७ ॥

तन्निर्मातुः स्मृतिर्यद्वन्महार्हगृहदर्शने ।
अकृतं वस्तुविस्तारं, दृष्ट्वा वै दिव्यमद्भुतम् ॥ ३८॥

महान सुन्दर महलके दर्शनसे जैसे उसके बनाने वाले की स्मृति होती है, जो मनुष्य द्वारा नहीं बनाये गये ऐसे अलौकिक एवं अद्भुत पदार्थों की महिमा देख कर ॥ ३८ ॥

तत्कर्तरीश्वरस्यापि, तद्वदुत्पद्यते स्मृतिः ।
ततः किमद्भुतं तत्र, मज्जंतीशीति सज्जनाः ॥ ३६॥

वैसेही उसके कर्ता ईश्वरकी स्मृति उत्पन्न होती है । इस लिये वहां यदि मननशील मनुष्य ब्रह्ममें निमग्न हो जाते हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥

सौन्दर्यं ब्रह्मणो रूपं प्रकृत्यामनुवर्तते ।
प्रकृतेर्नास्ति सौन्दर्यं स्वस्वरूपात्मको गुणः ॥ ४०॥

सौन्दर्य ब्रह्मका ही स्वरूप है । ब्रह्मका सौन्दर्य प्रकृति में अनुगत होता है । सौन्दर्य प्रकृति के अपना स्वरूप भूत गुण नहीं है ॥ ४० ॥

सत्यानाञ्च महासत्यं चेतनानाञ्च चेतनम् ।
ब्रह्म विद्धि जगद्बीजं सुन्दराणाञ्च सुन्दरम् ॥ ४१॥

सब सत्यों का महासत्य, चेतनों का भी चेतन, एवं सुन्दरों का भी सुन्दर, इस जगत का बीज भूत ब्रह्म ही है, यह जानो ॥ ४१ ॥

आनन्दयति तत्तादृग् ब्रह्मैव परमाततम् ।
प्रकृतिद्वारतः सर्वान् यथास्वंहि जनुष्मतः ॥ ४२॥

सबके अधिष्ठान, व्यापक, तादृश ब्रह्म ही प्रकृति के द्वारा सब प्राणियों को यथायोग्य आनन्दका प्रदान करते हैं ॥ ४२ ॥

एवं ब्रह्मण एवैषा न स्वस्याः प्रकृतेर्द्युतिः ।
इति साक्षात्प्रपश्यन्ति ब्रह्मतत्त्व विशारदाः ॥ ४३॥

इस प्रकार परब्रह्म की ही यह शोभा है । प्रकृति की अपनी शोभा नहीं है । ब्रह्मतत्त्वको जानने वाले इसका साक्षात् अनुभव करते हैं ॥ ४३ ॥

तादृशास्तादृशे स्थाने ब्रह्मसौन्दर्य दीपिते ।
ब्रह्म सम्पत्तिमायान्ति भावाविष्टधियोबलात् ॥ ४४॥

ब्रह्म सौन्दर्य से शोभित ऐसे स्थानों में ब्रह्मवित् लोग भावाविष्ट होकर जबरन ब्रह्म समाधिको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

अहो ! पुण्य महो ! पुण्यं, गोमुखी दर्शनं मुने ! ।
पुण्यात्मा धन्यधन्यो यः स एव लभते हि तत् ॥ ४५॥

हे मुने ! गोमुखका दर्शन अति अद्भुत और अत्यन्त पुण्यदायक है, जो पवित्रात्मा अत्यन्त ही धन्य है, वे ही उसको प्राप्त करते हैं ॥ ४५ ॥

गोमुखीदर्शनं तत्र, स्नानं च बहुशोभनम् ।
फलं ददाति भक्तेभ्यो, दृष्टं चादृष्टमेव च ॥ ४६॥

गोमुखका दर्शन और वहांका स्नान भक्तोंको ऐहिक एवं पारलौकिक सर्व प्रकारका अत्यन्त श्रेष्ठ फल देता है ॥ ४६ ॥

बहुना किमिहोक्तेन, गुह्याद्गुह्यतरं शृणु !।
गोमुखीसदृशं तीर्थं, भुवि नान्यत्र विद्यते ॥ ४७॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या ? गोप्यसे भी अत्यन्त गोप्य सुनो ! गोमुखके सदृश तीर्थ भूलोकमें अन्यत्र नहीं है ॥ ४७ ॥

यानि प्रोक्तानि वै स्थानान्यत्र तुभ्यं मुनीश्वर ! ।
श्रद्धया तानि सर्वाणि, सेवितव्यानि मानवैः ॥ ४८॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जितने स्थान तुम्हारे प्रति वर्णन किये हैं, वे सभी मनुष्यों द्वारा श्रद्धापूर्वक सेवन करने योग्य हैं ॥ ४८ ॥

धन्यातिधन्य मन्यच्च, स्थानं यद्यदधस्तनम् ।
श्रूयतां सावधानेन मनसा श्रद्धयाऽपि च ॥ ४९॥

इनके सिवाय जो और भी धन्यसे भी अत्यन्त धन्य नीचेके स्थान हैं, उनको सावधान मनसे श्रद्धापूर्वक सुनो ॥ ४९ ॥

गौरीकुण्डाच्च नीचैः श्री भैरव स्थानमुत्तमम् ।
भैरवोभैरवाकारस्तत्र सेव्यो महाबलः ॥ ५०॥

गौरीकुण्डसे नीचे अति उत्तम श्रीभैरवजी का स्थान है । वहां भयानक प्राकृतिवाले महाशक्तिशाली श्री भैरवजी सेवन करने योग्य हैं ॥ ५० ॥

ततोधस्ताच्च गम्भीरं, स्थानमत्यंतशोभनम् ।
सङ्गता यत्र कृष्णाङ्गी जह्नु गङ्गा च गङ्गया ॥ ५१॥

और उससे भी नीचे अत्यन्त सुन्दर, गम्भीर स्थान है, जहां श्यामसुन्दरी जह्नु गंगा श्रीगंगाजी के साथ मिली है ॥ ५१ ॥

जह्नुगङ्गातटेनोर्द्धं, गच्छन्तो मुनिसत्तम ! ।
लभंते बहुतीर्थानि, दिव्यान्यंहोहराणि च ॥ ५२॥

हे मुनीश्वर ! जह्नु गंगाके किनारे, ऊपर की ओर जाने वाले मनुष्य, पापको हरनेवाले अनेकों दिव्य तीर्थ प्राप्त करते हैं ॥ ५२ ॥

यियासवोऽनया सृत्या, कलधौतशिलोच्चयम् ।
यान्ति साक्षाच्छिवावासं, दर्शनात् संसृतिच्छिदम् ॥ ५३॥

साक्षात् शिवजीके निवासस्थान और दर्शन से ही सम्पूर्ण संसारबंधको नष्ट करनेवाले रजतगिरि कैलाश को जाने वाले लोग इस मार्गसे जाते हैं । ( इस कैलाशमागको "नीलङ्ग पास" कहते हैं ) ॥ ५३ ॥

तस्याभ्यर्णत एव श्रीजह्नोराश्रमभूर्मुने ।
यत्र स्थित्वा तु राजर्षिश्चचार परमं तपः ॥ ५४॥

हे मुने ! उस संगमस्थान के समीप ही श्रीजह्नु महर्षिका आश्रमस्थान है । जहां निवास करके राजर्षि श्री जह्नुजीने अत्यन्त कठिन तपस्या की थी । ( इस स्थानको "जांगला" कहते हैं ) ॥ ५४ ॥

तस्याभ्यर्ण भुवि श्रीमत् कुङ्कुमाख्या सरिद्वरा ।
शृणु भद्रतटे यस्या, वीरभद्रो विराजते ॥ ५५॥

सुनो, उसके नीचे थोड़ी दूर पर कुंकुम नाम की मनोहर जल धारा है, जिसके रमणीक तटपर श्री वीरभद्र विराजमान हैं ! (इस धाराको "गुंगुम नाला" कहते हैं ) ॥ ५५ ॥

तत्पार्श्वे च महत् स्थानं, यत्र देवी विराजते ।
चण्डेश्वरी महाकाली, चण्डमुण्डविमर्दिनी ॥ ५६॥

और उसकी बगल में एक महान् स्थान है, जहां चण्ड, मुण्ड, दैत्योंका विनाश करने वाली महाकाली चण्डेश्वरी देवी विराजती है ॥ ५६ ॥

तत्रैव च महारम्या, धारा पुण्यप्रदा मुने !।
देव गङ्गा समाख्याता, दैवतैरुपसेविता ॥ ५७॥

हे मुने ! उसी जगह सुरम्य पुण्यदायिनी और देवताओं द्वारा सेवित देवगंगा नामकी विख्यात जलधारा है । ( इसे भी देशभाषामें "देवघाट"

कहते हैं) ॥ ५७ ॥

ततोऽपि पृष्ठतः स्थानं, मार्कण्डेयस्य नारद ।
विशालपुलिनोपान्ते, दर्शनीयं समंततः ॥ ५८॥

हे नारद ! इस धाराके पीछे गंगाजीकी विशाल रेतीके समीप सब ओरसे अत्यन्त सुन्दर, दर्शनीय मार्कण्डेय मुनिका मनोहर स्थान है । ( यह "मार्कण्डेय" नाम से प्रसिद्ध है ) ॥ ५८ ॥

मतङ्गोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तत्रैव बहुवत्सरान् ।
तपस्तेपेऽनिलाहारः, सिद्धिं चेयाय निस्तुलाम् ॥ ५६॥

इसके पास ही मुनि श्रेष्ठ मतंग ऋषिने केवल वायुभक्षण करके अनेकों वर्ष तक तपस्या की थी और अतुल सिद्धिका भी लाभ किया था । (इस स्थानको "मखवा" कहते हैं ) ॥ ५६ ॥

गङ्गोत्तरं गन्तुकामा, धर्मजाग्र्याश्च तद्भुवि ।
बहुतमीर्वसन्तोऽम्बां, पूजयामासुरास्तिकाः ॥ ६०॥

गंगोत्तरी जानेवाले युधिष्ठिर आदि पांडवोंने उस स्थानपर अनेक रात्रि निवास करते हुए आस्तिकता और प्रेमपूर्वक श्री गंगाजीका अर्चन किया था ॥ ६० ॥

वायुपुत्र समानीता, वायुवेगा महानदी ।
पुनात्येतन्मुनिपदं वहन्ती मध्यतो दिशि ॥ ६१॥

वायुपुत्र भीमसेनकी लाई हुई वायुके तुल्य वेगवाली जलकी महान धारा मध्यभागमें बहती हुई इस मुनि स्थानको पवित्र करती है । ( इसको "भोमधारा कहते हैं" ) ॥ ६१ ॥

पाण्डवाश्वखुराणाञ्च, चिह्नमश्मतलेऽङ्कितम् ।
पुण्यपुं मात्र सुलभं, प्रपश्यात्र महाद्भुतम् ॥ ६२॥

यहां पुण्यात्मा पुरुषों को ही प्राप्त होने वाले, अत्यन्त आश्चर्य दायक, पाषाण पर अंकित हुए पांडवोंके घोड़े के खुर चिन्हों का दर्शन करो ॥ ६२ ॥

सर्वसम्पत्करं ह्येतत्, सद्म सत्याधिरोहणी ।
अम्बायाः प्रियवेश्मैतत्, प्रियं दिविषदामपि ॥ ६३॥

यह स्थान सब संपत्ति को देनेवाली और ब्रह्मलोक की सीढी है । यह श्रीगङ्गामाता जी का प्रिय निवास स्थान है और सदैव देवताओंकी भी अति प्रिय है ॥ ६३ ॥

मठानामपि सर्वेषां, पृथिवीपृष्ठवर्तिनाम् ।
गङ्गा निकेतनं ह्येतन्मुख्यो मठ इतीष्यते ॥ ६४॥

पृथ्वीपर वर्तमान सब मठों में गंगाजीका यह निवास स्थान मुख्य मठ माना जाता है । (इसलिये यह "मुखी मठ" नामसे भी प्रसिद्ध है ) ॥ ६४ ॥

भगीरथ तपः स्थाने, यादृक स्यात्कर्मणः फलम् ।
तादृगेव फलं विद्धि, मार्कण्डेय तपः स्थले ॥ ६५॥

भगीरथके तपस्थान गंगोत्तरीमें जितना दानादि पुण्यकर्मका फल होता है, उतना ही फल इस मार्कण्डेयके तपस्थानमें भी जानो ॥ ६५ ॥

स्नान तर्पण दानादि सत्क्रियाः शास्त्रचोदिताः ।
सुवतेऽत्रापि कर्तृणां, फलं महदभीप्सितम् ॥ ६६॥

यहां भी शास्त्र विहित स्नान, तर्पण दान आदि सब शुभ क्रियायें, उन्हें करनेवालेको महान् अभीष्ट फलप्रदान करती है ॥ ६६ ॥

शिला तत्र महापुण्या, विशाला मुनिसेविता ।
दर्शनेन विशीर्यंते, प्राकृताः कर्म कोटयः ॥ ६७॥

वहां महान पुण्य प्रद, मार्कण्डेय मुनिसे सेवन की हुई, विशाल शिला है, जिसके दर्शनसे पूर्व किये हुए असंख्यों पापकर्म नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

अन्नवासोवितरणमस्मिन् स्थाने विशिष्यते ।
तन्महाश्मनि विप्राद्यास्तर्पणीया यथाविधिः ॥ ६८॥

इस स्थानपर अन्न, वस्त्र आदिका दान अतिश्रेष्ठ है । तथा उस पवित्र शिलापर बैठाकर ब्राह्मणादिओ को विधि पूर्वक भोजन आदि से तृप्त करना उचित है ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेयपुरे गङ्गामातुराराध्यसंनिधौ ।
रात्रिवासी वसेद्गत्वा, वसत्यां कृत्तिवाससः ॥ ६९॥

मार्कण्डेयपुरी में श्री मातेश्वरी गंगाजीकी पूज्य सन्निधिमें एक रात्रि भी रहनेवाला, मरने के पश्चात् अवश्य ही शिवलोकमें वास करता । है ॥ ६९ ॥

महर्षयो मस्करीन्द्रास्तथा मातृपदाब्जयोः ।
अनुरक्ता विरक्ताश्च, वसन्त्यत्र विशेषतः ॥ ७०॥

महर्षि और श्रेष्ठ संन्यासी जन, श्रीगंगाजीके चरणकमलों के अनुरागी तथा अत्यन्त तीक्ष्ण वैराग्यवान् भी यहां विशेष कर निवास करते हैं ॥ ७० ॥

दक्षयागे सतीदाहः, सम्पन्नस्तदनंतरम् ।
पुत्रीरूपेण सा देवी, हिमाद्रे दैवतात्मनः ॥ ७१॥

दक्षजी के यज्ञ में सतीजी भस्म हो गई थीम् । उसके पश्चात् देवतात्मा हिमालयकी पुत्री रूपसे, ॥ ७१ ॥ सञ्जाता यत्र रुद्राणी, सर्वाम्बा सर्वनायिका । नातिदूरे च तत्स्थानं, वत्स ! दिव्यमनुत्तमम् ॥ ७२॥

सारे जगत्की माता और सबकी अधीश्वरी साक्षात् शिव-पत्नी वह देवी जहां उत्पन्न हुई थी; हे पुत्र ! वह दिव्य और अति उत्तम स्थान इस मतंगस्थानके पास ही स्थित है । ( इसे देशमाषामें "कचोरा" कहते हैं ) ॥ ७२ ॥

हरिप्रयाग इत्येतत्, तीर्थं पश्य समीपतः ।
स्नात्वा तस्मिन्कुवृत्तोऽपि, हरिलोकमवाप्स्यति ॥ ७३॥

उसके समीप ही "हरि प्रयाग" नामक तीर्थको देखो ! जिसमें स्नान करके अत्यन्त दुराचारी भी विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं । यह "हरसल" नामसे प्रसिद्ध है ) ॥ ७३ ॥

गुप्तप्रयाग इत्यन्यद्, गुप्तमेतन्महीतले ।
अध ऊर्ध्वञ्च सप्तानां, गुप्तागौघनिबर्हणम् ॥ ७४॥

उसीके पास "गुप्तप्रयाग" नामक एक और तीर्थ भी है । पहले की सात पीढ़ियोंके पितरोंके तथा आगामी सात पीढ़ियों में होनेवालोंके गुप्त पाप समूहको नष्ट करने वाला यह तीर्थ, पृथ्वी पर अत्यन्त गुप्त है । ( इसे भाषामें "कुतिबाट" कहते हैं ) ॥ ७४ ॥

श्यामगङ्गाम्बुसङ्गोऽपि, दृश्यतां तस्य पार्श्वतः ।

देदीप्यतेऽङ्ग ! यो दिव्य विशालपुलिनश्रिया ॥ ७५॥

हे पुत्र ! उसकी बगल में भागीरथीके साथ श्यामगंगाके जलका संगम भी देखो ! जो अलौकिक और सुन्दर विशाल रेती के मैदानकी शोभासे देदीप्यमान है । ( इसे "श्यामघाट" कहते हैं ) ॥ ७५ ॥

दर्शनात् स्पर्शनात् स्नानात्सम्पद्ब्रह्मोत्तरोत्तरम् ।
श्रद्धया सेवनीयं वै, सर्वमेतद्यथाविधि ॥ ७६॥

दर्शनसे, स्पर्शन और स्नानसे यह उत्तरोत्तर ऐश्वर्य बढ़ाने वाला है । इस प्रकार ऊपर कहे हुए ये सब तीर्थ श्रद्धासे विधिपूर्वक सेवन करने योग्य हैं ॥ ७६ ॥

वामभागे च गङ्गाया, वरीवर्ति महत्पदम् ।
विश्वनाथपुरी साक्षाद्विश्वेशो यत्र राजते ॥ ७७॥

गंगाजीके बाँये किनारे महान् सुन्दर स्थान विश्वनाथपुरी विद्यमान है; जहां साक्षात् विश्वेश्वर विराजते हैं ( यह "धरालीं" नामसे प्रसिद्ध है ) ॥ ७७ ॥

अस्ति यत्र महाभागा, धारा चोत्तरवाहिनी ।
श्रीकण्ठ निःसृता हत्याहारिणीति सुविश्रुता ॥ ७८॥

जहां श्री कंठ पर्वतसे निकली हुई, उत्तरवाहिनी महान माहात्म्य शालिनी "हत्याहारिणी" नामसे प्रसिद्ध जलधारा है ॥ ७८ ॥

उषित्वा तु निशामेकामत्र यः श्रद्धयान्वितः ।
त्रिवेण्यां स्नाति वै तस्य, दहयते पातकं महत् ॥ ७९॥

जो यहांपर श्रद्धायुक्त होकर एक रात्रि भी निवास करके, भागीरथी, देव गंगा और हत्याहारिणी इन तीनों के विचित्र संगमस्थान त्रिवेणीमें स्नान करते हैं, उनके महापातक भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

क्षीर गङ्गा समायोगो, गङ्गया यत्र तत्पुरे ।
तत्राप्यत्युत्तमे तीर्थे, स्नातव्यं भूतिमिच्छता ॥ ८०॥

उसी पुरी में जहां गंगाजीके साथ क्षीरगंगा ( यानी दूध गंगा ) का संगम है, इस उत्तम तीर्थमें भी ऐश्वर्यकी इच्छा वाले पुरुषको स्नान करना चाहिये ॥ ८० ॥

जयन्त्यन्याश्च गङ्गायाः कूलयोरुभयोरपि ।
पुण्यदाः पुण्यचरिताः, सरितोऽनेक सङ्ख्या ॥ ८१॥

गंगाजीके दोनों किनारोंपर और भी अनेकों पुण्यदायिनी और पुण्य चरित्र वाली जलधाराएं विराजमान है ॥ ८१ ॥

तस्योपरि महाशृगं, श्रीकण्ठं पश्य वै मुने ।
साक्षाच्छ्रीकण्ठसदनं, वैकुण्ठादिनिषेवितम् ॥ ८२॥

हे मुने !, उसके ऊपर श्री कंठ नामक महान् सुन्दर पर्वतके शिखरको देखो ! वह साक्षात् शिवजीको निवासस्थान और विष्णु आदि देवताओं द्वारा सेवित हैं ॥ ८२ ॥

सर्व मेतन्महत्स्थानं, पुण्यात् पुण्यतरं भुवि ।
मुनीनां रम्य निलयः, साक्षागङ्गाविहारभूः ॥ ८३॥

यहां कहे हुए सब स्थान भी भूमंडलमें अत्यन्त श्रेष्ठ और पवित्रसे भी पवित्रतर हैं । मुनियोंके रमणीक निवास स्थान हैं, और साक्षात् गंगाजीकी विहार भूमि है ॥ ८३ ॥

गङ्गोत्तर्याश्च गङ्गाया, माहात्म्यं निस्तुलं परम् ।
वर्णनं तस्य सम्पूर्ण, कर्तुं कः प्रभवेन्मुने ! ॥ ८४॥

हे मुने ! गंगोत्तरी और गंगाजीका माहात्म्य अति श्रेष्ठ, अतुल और अपार है । उसको पूरा २ कथन करने में कौन समर्थ हो सकता है ॥ ८४ ॥

लब्ध्वा तु मानुषं देहं, न कुर्यात्साम्परायिकम् ।
योऽत्र हन्त स वैधेयः काकवद् व्यर्थ जीवनः ॥ ८५॥

इसलोकमें मानवशरीर मिलकर भी जो परलोक संबन्धी पुण्य कर्म आदि नहीं करता, वह मूर्ख काकके तुल्य निरर्थक जीवन विताता है ॥ ८५ ॥

देहादस्ति परो ह्यात्मा देहान्ते तस्य का गतिः ।
इति चिन्तयितुं जन्तुः कः प्रभुर्मनुजेतरः ॥ ८६॥

देह से भिन्न आत्मा है, देह के अन्त में उस की क्या गति होगी ? इस प्रकार विचार करने में मनुष्य से अन्य कौन प्राणी समर्थ होता है ॥ ८६ ॥

आहार पशु कर्मादि भोगेष्वधिक मोदनम् ।
पुं बुद्धेरर्थ्यमानञ्च न पुमान् स महान् पशुः ॥ ८७॥

आहार, मैथुन आदि भोगों में अधिक अधिक आनन्द करना ही मनुष्य बुद्धि का परम अभीष्ट हो तो, फिर वह मनुष्य नहीं, महान पशु है ॥ ८७ ॥

किं मे श्रेयः किमश्रेयो विचार्येदं नृदेहिना ।
श्रेयोमार्गेषु नितरां चरितव्यं सुमेधसा ॥ ८८॥

मेरा क्या श्रेय है, क्या अश्रेय है, इस का विचार करके बुद्धिमान पुरुष सदा श्रेयो मार्गों में ही प्रवृत्ति करें ॥ ८८ ॥

ब्रह्मनिष्ठैव सर्वेषां श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ।
विषयासङ्गसंत्यागात् प्राप्यतेऽबाकटाक्षतः ॥ ८९॥

ब्रह्ममें निष्ठा ही सब श्रेयों में महान श्रेय है । विषयासक्ति के परित्याग से, तथा जगन्माता श्रीगंगाजी के अनुग्रह से यह ब्रह्मस्थिति प्राप्त होती है ॥ ८९ ॥

देशकालादि परिधिरहंत्वमिति भेद धीः ।
भोक्ता भोग्यमिति द्वैतं यत्र न ब्रह्म तत्परम् ॥ ९०॥

देश काल आदिके परिच्छेद, "मैं, तुम" इस प्रकार की भेद बुद्धि, एवं भोक्ता, भोग्य इस प्रकार के द्वैत भी जहां नहीं रहते, वह परब्रह्म है ॥ ९० ॥

सूर्यचन्द्रौ च नक्षत्राण्यहोरात्रादि यत्र नो ।
न च शून्यं न चाशून्यमद्भुतं ब्रह्म तत्परम् ॥ ९१॥

सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र, तथा दिन रात आदि भी जहां नहीं हैं, जो शून्य भी नहीं, अशून्य भी नहीं वह आश्चर्य वस्तु परब्रह्म है ॥ ९१ ॥

न योषा न पुमान् षण्डो न च मूर्तममूर्तकम् ।
न च तादृङ् न चैतादृक् तादृशं ब्रह्म तत्परम् ॥ ९२॥

जो स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, नपुंसक भी नहीं, साकार नहीं, निराकार भी नहीं, जो परोक्ष नहीं, अपरोक्ष भी नहीं, जो उस प्रकार का है, वह परब्रह्म है ॥ ९२ ॥

ब्रह्म सत्यमसत्सर्वं नेतोऽन्यत्स्वप्नसन्निभम् ।
देशकालादिकलना कलितं यदिदं जगत् ॥ ९३॥

ब्रह्ममात्र सत्य है, अन्य सारा असत्य है; देश, काल आदियों की कल्पना

द्वारा कल्पित, तथा स्वप्न के सदृश, यह परिदृश्यमान जगत् इस ब्रह्म से भिन्न सत्ता वाला नहीं है ॥ ९३ ॥

ब्रह्मैव सकलं साक्षादिति निष्ठाऽपरोक्षतः ।
पुमर्थः परमो ज्ञेयः परमानन्दवर्षिणी ॥ ९४॥

"स्व स्वरूप ब्रह्म ही यह संपूर्ण जगत्," इस प्रकार की परमानन्द को वर्षने वाली अपरोक्ष निष्ठा को ही परम पुरुषार्थ जानना चाहिये ॥ ९४ ॥

विवेक विधुराणां तु क्षुद्रानन्द विधायकाः ।
पुमर्थपदमायान्ति कामिनी काञ्चनादयः ॥ ९५॥

क्षणिक आनन्द को देने वाले कामिनी काञ्चन आदि ही विवेक रहितों के लिये तो परम पुरुषार्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ९५ ॥

पूर्वप्रज्ञावशादेव सस्पृहो वाऽस्तु निः स्पृहः ।
श्रद्धयाऽऽराधयन् देवीमुत्तमां गति मृच्छति ॥ ९६॥

पूर्व संस्कार से इस प्रकार सकाम हो या निष्काम, श्रद्धापूर्वक देवी की आराधना करने वाला श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो जाता है ॥ ९६ ॥

एकमेव परं तत्त्वं ब्रह्म चेश्वर पूरुषौ ।
शिवो विष्णुश्च गङ्गा चैत्याख्याभेदैः प्रकीर्त्यते ॥ ९७॥

एक परम अद्वितीय तत्त्व को ही ब्रह्म, ईश्वर, पुरुष, शिव, विष्णु, गंगा इत्यादि अनेक नामों से ऋषि लोग व्यपदेश करते हैं ॥ ९७ ॥

असारे खलु संसारे सारं सत्यञ्च किञ्चन ।
अन्यत् किमस्ति सम्प्रार्थ्यं प्रार्थ्यतेऽथापि मोहतः ॥ ९८॥

अहो ! निःसार इस संसार में ईश्वर के सिवाय प्रार्थना करने योग्य, सार और सत्य वस्तु अन्य क्या है ? तथापि अविवेक से लोग प्रार्थना करते हैं ॥ ९८ ॥

भक्तिं कुर्वन्तु मनुजाः कथञ्चित् परमेश्वरे ।
अर्थकामाश्च सेवन्तां तदत्तार्थैस्तमेव हि ॥ ९९॥

मनुष्य क्लेश करके भी परमेश्वर में भक्ति बढ़ावेम् । अर्थ कामी लोग भी परमात्मा की कृपा से प्राप्त हुए धन से उस परमात्मा की ही सेवा

करे ॥ ९९ ॥

ईश्वरः कल्पतरुवत् कामितार्थ प्रदायकः ।
सर्व शक्तं तमुत्सृज्य कं याति शरणं नरः ॥ १००॥

ईश्वर कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट विषयों को प्रदान करने वाला है ।
सर्व शक्तिमान उनको छोड़कर मनुष्य किस की शरण में जाता है ॥ १०० ॥

अहं पिताऽस्य जगतो मत्पिता परमेश्वरः ।
फलदाता च सर्वज्ञः सर्वेषां सर्व बुद्धिगः ॥ १०१॥

मैं इस जगत का स्त्रष्टा हूं; हमारा भी स्त्रष्टा परमेश्वर है । सर्व
बुद्धियों में स्थिति करने वाले अन्तर्यामी सर्वज्ञ वे ही सब प्राणियों को
कर्म फल देते हैं ॥ १०१ ॥

शक्तिर्न चेत् पृथक शक्ताद् गङ्गैवेश्वररूपिणी ।
तामेतु शरणं मर्त्यो मातरं स्वेष्ट सिद्धये ॥ १०२॥

यदि शक्ति शक्तिमान से भिन्न नहीं है, तो श्री गंगाजी परमेश्वर
रूपिणी ही हैं । मनुष्य अपनी इष्ट सिद्धि के लिये उस जगन्माता की शरण
में जावे ॥ १०२ ॥

यः पठेच्छ्रुणुयाद्वापि, संवादमिममावयोः ।
गङ्गोत्तरपरं पुण्यं, सोऽपि याति परां गतिम् ॥ १०३॥

और जो हम दोनोंके इस गंगोत्तरी विषयक पुण्यप्रद संवाद का पाठ
अथवा श्रवण करे, वह भी परम गति को प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥

भद्रं भवतु ते पुत्र ! भद्रंश्च जगतोऽनिशम् ।
इत्युक्त्वा सर्वतो भद्रं, विधियोपरराम ह ॥ १०४॥

हे पुत्र ! तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो । और संपूर्ण जगत् का भी सर्वदा
कल्याण हो ! इस प्रकार सबका सब प्रकार कल्याण कह कर, ब्रह्माजी
तूष्णीं भाव, यानी आनन्दमय शांत भावको प्राप्त हुए ॥ १०४ ॥

गङ्गे ! मात नमस्तुभ्यं, गङ्गे ! मातर्नमोनमः ।
पावनी पतितानां त्वं पावनानां च पावनी ॥ १०५॥

हे गंगे ! हे माता ! तुमको नमस्कार हो ! हे गंगे ! हे माता ! तुमको
बारम्बार नमस्कार हो ! तुम पतितोंको पवित्र करने वाली हो ! और

पवित्रों को भी पवित्र करने वाली हो ॥ १०५ ॥

इति श्रीनारदोगङ्गा, गायन्गायन् मुहुर्मुहुः ।
पितरञ्च नमस्कृत्य, निर्जगाम सभान्तरात् ॥ १०६॥

इस प्रकार श्री नारद् जी बारम्वार श्री गंगाजीका माहात्म्य गाते हुए, पिता ब्रह्माजीको नमस्कार कर, उस महासभाके मध्यसे चले गये ॥ १०६ ॥

नमस्तुभ्यं महाभागे ! भगीरथ रथानुगे ।
नमस्तुभ्यं जगन्नाथे ! गङ्गे ! त्रिपथगामिनि ! ॥ १०७॥

हे महाभागे ! हे भगीरथ के पीछे चलने वाली ! तुझको नमस्कार हो ! हे जगदीश्वरी ! हे गंगे ! हे त्रिपथ गामिनी ! अर्थात् तीन मार्ग से चलने वाली ! तुझको नमस्कार हो ! ॥ १०७ ॥

विश्वेश्वर प्रेरणयैव कृत्वा
विश्वेश्वरीक्षेत्रमहत्त्वमेतत् ।
विश्वेश्वरायैत्र समर्पितं तद्
विश्वेश्वरप्रीतिकृदस्तु नित्यम् ॥ १०८॥

यह श्री विश्वेश्वरी गंगाजीके क्षेत्रका माहात्म्य साक्षात् श्री विश्वनाथजीकी प्रेरणासे ही रचकर, श्री विश्वनाथजीको ही समर्पण किया गया है । यह सर्वदा श्रीविश्वनाथजी को प्रीतिकर हो ॥ १०८ ॥

इति श्रीगंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्ये श्रीगोमुखमार्कण्डेयादि तीर्थवर्णनं नाम द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

इति श्रीगंगोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यं सम्पूर्णम् ।

# श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः

## श्रीगोमुखीयात्रा प्रस्तावना

श्री गौमुखी यात्रा की प्रथमावृत्ति सन् १९३५ ई० में प्रकाशित हुई थी । परन्तु हिन्दी अनुवाद न होने के कारण संस्कृत न जानने वाले पाठकों के लिये इसकी उपयोगिता कुछ कम हो गई थी । इसलिये इस बार अनुवाद के सहित इसे प्रकाशित करनेका उत्साह किया । और गंगोत्तर एवं गोमुखके महत्वका उल्लेख करने वाले कुछ श्लोक भी पूज्य श्री स्वामीजी से ही रचित श्री गंगास्तोत्रसे उद्धृत करके इसमें संयोजित किये हैं ।

प्रकृत श्लोकोंका अनुवाद दो साल पहले चातुर्मास्यमें श्री गोमुख स्थानमें पूज्य स्वामीजी के साथ निवास करते समय स्वामीजी के चरणों में ही बैठ कर लिखा था । आशा है इस रूप में यह छोटा ग्रन्थ गंगाजी तथा हिमालयके प्रेमियोंके लिये महान् उपकारक एवं हर्षदायक होगा ।

श्री स्वामीजीके संस्कृत भाषा में लिखित जीवन चरित्र में लिखते है कि :

अष्टादशे वयसि तेन विभाकराख्यं
काव्योत्तमं व्यरचि केरल गीर्मयं यत् ।
अस्ताविवस्य कविभिः कवितानुरक्तिः
प्रावादि हृष्ट मनसा विजयाय चाशीः ॥

अठारह सालकी आयुमें ही काव्य रचनामें प्रवृत्त होकर विद्वत्प्रशंसा के पात्र हुए, स्वामीजीकी विख्यात तूलिकासे निस्सृत इन पद्योंके माधुर्य तथा गुण पुष्कलताके विषयमें क्या कहना ? सहृदयोंके हृदय ही इसमें प्रमाण है । किञ्च गोमुखके बारे में कुछ लिखनेका अधिकार भी प्रतिवर्ष गोमुख प्रान्तमें जाकर निवास करने वाले, साक्षात् अनुभवी श्री स्वामीजीसे बढ़कर अन्य किसको होगा ?

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस हिमालय प्रान्त में श्री स्वामी जी के निवाससे, तथा श्री गंगोत्तरी क्षेत्र माहात्म्य, गोमुखी यात्रा, एवं सौम्य काशीश स्तोत्र, बद्रीश स्तोत्र, आदि नाना सरस सद् ग्रन्थोंकी रचनासे भी, श्री गंगोत्री एवं गोमुख जैसे पुण्य क्षेत्रों का तथा उत्तरा खण्डका महत्व विशेष काफी प्रचरित हुआ है । इसलिये हम सब और उत्तर खण्ड एवं गंगाजीके भक्त वर्ग भी श्री स्वामीजीके सदा कृतज्ञ और ऋणी हैं । श्री स्वामीजीके पूजनीय चरण कमलों में श्रद्धा और भक्ति होनेके लिये भी इससे बढ़कर और क्या हेतु चाहिये ? ।

उत्तरकाशी २५-१२-१९४५
इति सुधिजन विधेय पं० वृन्दाप्रसाद पण्डा श्री गंगोत्तरी, हिमालय

## श्रीगोमुखीयात्रा।

वन्दे वन्यपदाम्बुज द्वयममुं राजन्यवीराग्रणीं
यस्यैकाग्रमहोग्रदीर्घतपसा नैस्तुल्यसीमाजुषा ।
क्षेत्र गोत्रवरेण्यमूर्धगमिदं जेजीयतेऽत्राच्युत-
क्षेत्रस्पर्धि समस्तमस्तकनतं गङ्गोत्तरख्यातिमत् ॥ १॥

श्री गङ्गाजीकी साक्षात् उत्पत्ति स्थान गोमुखी अथवा गोमुख श्री गङ्गोत्रीसे लगभग १७-१८ (१८ मील वृद्धोक्ति के अनुसार लिखा करतें, आजकल कै सर्वे नक्शे के अनुसार ११ मील हैं ।) मील आगे है, इस गोमुखके मार्गका वर्णन करने की इच्छा से पहले पूज्य स्वामीजी प्रथम श्लोकसे राजा श्रीभगीरथको नमस्कार करते हैं :—
वीर पुरुषोंमें जो श्रेष्ठ हैं और जिनके दोनों चरण कमल वन्दनीय हैं, ऐसे उन राजा भगीरथको मैं नमस्कार करता हूं, जिनकी निस्तुल एकाग्र महान् घोर और चिरकालीन तपस्या के प्रभावसे हिमालयके मस्तक देश में स्थित यह क्षेत्र वैकुण्ठ सदृश सर्व देव मनुष्यों के मस्तकसे नमस्कृत होता हुआ "गंगोत्तर" इस नामसे ख्यातिमान होकर इस भूतलमें सर्वोत्कृष्टतासे विराजता है ॥ १ ॥

धन्ये । धन्यभगे ! भगीरथशिले ! सौभाग्य भाग्याम्बुधे ।

कार्त्तज्ञ्येन, नमस्करोमि शतशस्त्वत्पादपङ्के रुहम् ।
त्वत्पृष्ठे ननु निष्ठुर नरपतिः स्थित्वा तपस्तप्तवान्
यन्मूलः खलु भूतलेऽमृतधुनी सञ्चार भाग्योदयः ॥ २॥

इस श्लोकसे गङ्गोत्तरी धाममें स्थित श्री भगोरथ शिलाके लिये नमस्कार करते हैं -
हे धन्ये ! हे धन्य आकार वाली भगीरथ शिले ! हे सौभाग्य तथा भाग्यको महान् अम्बुधे ! कृतज्ञभावसे शत सहस्त्रवार तुम्हारे चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हूँ । तुम्हारे पृष्ठ देश में स्थित होकर राजा भगीरथने प्रचण्ड तपस्या की थी, जिस तपस्याका महिमासे इस मृत्युलोकमें श्री गंगाजी के आगमनका भाग्योदय हुआ ॥ २ ॥

लक्ष्मीःक्रीडति यत्र तत् सुरभिलं पश्यामि लक्ष्मीवनं
भुजे चित्रविचित्रदृश्यसुषमां पञ्चेन्द्रियाह्लादिकाम् ।
दुःखास्पृष्टसुखं सुयोगिसुलभं स्वर्गेऽपि यदुर्लभं
तन्मेभाति च चित्तसंयममहायासं विनाप्यञ्जसा ॥ ३॥

अब इस श्लोकसे श्रीगोमुख के मार्ग में श्रीगंगोत्तरीके निकटस्थ लक्ष्मी वनका वर्णन करते हैं :
जहाँ सर्वदा साक्षात् श्रीलक्ष्मी जी विहार करती हैं उस मनोज्ञ सुरभिल लक्ष्मीवनको मैं आगे देख रहा हूँ, और उसमें चक्षुरादि पांच इन्द्रियों को भी आनन्द देनेवाली आश्चर्यदायक नाना दृश्यों की शोभाको में अनुभव कर रहा हूँ । अहो ! दुख के स्पर्श से शून्य स्वर्ग में भी दुर्लभ महान् योगी जनको ही सुलभ जो अलौकिक सुख है, वह चित्तनिरोधके महान् क्लेश बिना ही मुझे प्राप्त हो रहा है । इस लक्ष्मीवनको गंगावनके नाम से भी निर्देश करते हैं ॥ ३ ॥

एतादृक्षवनान्तरेषु नितरां वैरक्त्य योगेन ये ।
रागद्वेष भयाकुलं जगदिदं विस्मृत्य निर्वासनाः ।
दीव्यद्दिव्यविचित्रसृष्टिरचनामाहात्म्यतस्तत्पतिं
ध्यायन्तःशिवमद्वितीयमृषयो जीवन्ति तेभ्यो नमः ॥ ४॥

प्रकृत श्लोक से प्रसंगवश एकान्तवासी ब्रह्मनिष्ठ महात्मा पुरुष के लिए नमस्कार करते हैं :
ऐसे महान वनान्तरों में जो ऋषिलोग अत्यन्त वैराग्य भावमें निष्ठित

होकर और राग द्वेष भय से सम्पूर्ण इस जगतका विस्मरण करके वासनाओंके उच्छेदपूर्वक नाना प्रकारकी दिव्य उज्वल इस सृष्टि रचनाके वैशिष्टयको देखकर उसके रचयिता अद्वितीय परमात्माको ध्यान करते हुए निवास करते हैं, उनके लिये नमस्कार है ॥ ४ ॥

नालं दुष्कृत दूषितः खलु पुमांस्त्वत्पार्श्वमागन्तुम-
प्यन्तर्द्वारभुवा कथं नु स भवत्प्रोत्कान्तये स्यात्प्रभुः ।
आख्यानं तु तवाघमर्द्दिनि ! शुभे । सम्पन्नमेतत्कथं
मन्ये मूढ़परम्परेति सुतरां गौरीवदर्थोज्झितम् ॥ ५॥

और इस पद्यसे एक मील कुछ आगेकी अघमर्द्दिनी नामक गुफाका वर्णन करते हैं । मार्ग में इस गुफाको उल्लंघन करना पडता है । पहले इस गुफाको लांघना कुछ अधिक कठिन था, आजकल कठिनाई कुछ कम होती जा रही है :
अल्प पापसे भी दूषित पुरुष तुम्हारे निकट पहुंचने के लिये भी समर्थ नहीं होता, फिर तुम्हारे अन्दरके छिद्रसे तुम्हारा अतिक्रमण करने के लिये वह कैसे समर्थ होगा ? हे शुभे ! अघमर्द्दिनी अर्थात् तुम्हारे जठर द्वारा तुम्हें लंघनेवालेका पाप नष्ट करनेवाली, इस प्रकारका नाम तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ ? मैं मानता हूँ कि केवल मूढ परम्परासे ही यह नाम आगत हुआ; क्योंकि काली कन्याको गौरी नामसे व्यपदेश करना जिस प्रकार अर्थ शून्य है, उसी प्रकार तुम्हारा यह नाम भी अर्थ शून्य है । भाव यह है, कि महा सुकृती लोग ही इस गुफाके द्वारा ऊपर यात्रा करने में सामर्थ्यवान होते हैं, पापी नहीं ॥ ५ ॥

सूर्यस्पर्शिशिलोच्चयोच्चशिखर प्रौढच्छविच्छायया
नानावर्ण युतं नितान्तनिपतन्नीचैर्महारंहसा ।
हैमं हेमनिभं सुमञ्जु सुमनो गङ्गाख्यमेतज्जलं
स्वस्मिन्मां निरुणद्धिहन्त न इतोगन्तुं समर्थोऽस्म्यहम् ॥ ६॥

दो मील आगे जाकर देवघाट नाम से प्रसिद्ध देवगंगाको इस पद्यसे वर्णन करते हैं :
महान् उच्च शिखरोंमें सूर्य किरणोंके स्पर्श से उत्पद्यमान प्रौढ़ कान्तिके प्रतिबिम्ब से रक्त नीलादि नाना वर्णवाला होता हुआ, बड़े वेगसे सर्वदा नीचे गिरनेवाला सुवर्ण सदृश मनोहारी देवगंगा नामक ,

यह हिमजल अपने महान् सौन्दर्यमें मुझको निरोध करता है, अतएव यहांसे आगे पदन्यास करनेके लिये मैं समर्थ नहीं होता हूँ ॥ ६ ॥

भ्रातर्भूर्ज्ज ! नमस्कृति स्तवपदे पुण्यातिपुण्यात्मन-
स्त्वां निन्दन्ति कपूययोनिरिति ये धिक्तान सुधीमानिनः ।
स्थावर्यं तव गाङ्गनीरलहरीसङ्घट्टिताङ्गस्य य-
द्धन्य धन्यमतीवधन्यममरेन्द्राद्यैश्च सम्प्रार्थितम् ॥ ७॥

यहांसे भी आगे जाकर भूर्ज्जवासा में गंगा किनारे खड़े हुए एक भूर्जवृक्षको देखकर भक्तिपूर्ण भाषामें उसको वर्णन करते हैं :
हे भाई भूर्ज्ज ! सुकृतियों से भी महा सुकृती तुम्हारे चरणों में अनेक वार नमस्कार है; निकृष्ट स्थावर योनि कहकर तुम्हारी जो निन्दा करते हैं या तिरस्कार करते हैं, उन पण्डिताभिमानियोंको धिक्कार है ! क्योंकि गंगाजलके प्रवाह से सर्वदा संघट्टित हुआ अङ्ग जिसका ऐसे जो तुम्हारा स्थावरपना है, वह धन्य है, अत्यन्त धन्य है, अति दुर्लभ है, इन्द्रादि देवताओं से भी सम्प्रार्थित है ॥ ७ ॥

आकीर्णा बहुगण्डशैलशिशुभिः प्रालेयसङ्घस्तथा
विस्तीर्णा खलु सञ्चकास्ति पुरतः श्री पुष्पवासस्थली ।
अपूर्णा च महाद्भुतैर्द्युतिमयैर्दिव्य प्रसूनै नृणा-
मानन्दामृतवर्षिणी दिविषदां श्रीनन्दनोद्यानवत् ॥ ८॥

आगे श्रीगोमुखके निकटस्थित पुष्पवास ( फूलवासा ) नामक विशाल मैदानका इस श्लोकसे वर्णन करते हैं :
बहुत क्षुद्र पाषाणोंके और हिमखण्डों के समूह से व्याप्त, अति मनोहर तथा विस्तीर्ण यह पुष्पवास स्थान यहां आगे विराजमान है; जो महान् अद्भुत शोभायमान नाना प्रकार के दिव्य पुष्पोंसे परिपूर्ण होता हुआ देवताओं को जिस प्रकार नन्दनोद्यान है, उस प्रकार सदा मनुष्यों को आनन्दरूपी अमृतकी वर्षा करता रहता है ॥ ८ ॥

तीर्थानामपि तीर्थमुत्तममिदं पुंसांपुमर्थप्रदं
रम्याणामपि रम्यमद्भुतयशः पूतात्प्रपूतंमहत् ।
साक्षाद्विष्णुपदोद्भवं हिमगुहाच्छिद्रेण चात्रोदितं
गङ्गामूलमनन्य भक्ति सुलभं श्रीगोमुखाख्यं भजे ॥ ९॥

अब इस श्लोकसे साक्षात् श्रीगोमुखका वर्णन करते हैं :

सर्व तीर्थों में भी उत्तमतीर्थ मनुष्योंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाले, अत्यन्त रमणीय एवं अद्भुत चरित्र वाले, पवित्रसे भी महान् पवित्र, साक्षात् विष्णु चरण से उत्पन्न होकर हिमगुफाके छिद्रसे प्रकट हुए और अनन्य भक्तिमात्रसे सुलभ श्रीगोमुख नामक इस दिव्य गंगाजीके मूल स्थानका मैं सेवन करता हूँ ॥ १० ॥

गङ्गे । गोमुखि ! तुभ्यमस्तु मनसा वाचा च तन्वा नम-
स्त्वां दृष्ट्वा तव निर्मलेऽमृतसमे स्नात्वा च भद्रे जले ।
मन्ये धन्य जनिर्ममेति सुतरां धन्योऽस्मि धन्योऽस्म्यहं
भूयो भूयैवानतोऽस्मि चरितार्थोऽस्मि त्वदासेवनात् ॥ १०॥

और अन्तमें इस श्लोकसे गोमुखके प्रति नमस्कार पूर्वक अपनी कृतार्थताको प्रकट करते हैं :
हे गोमुखि । हे गंगे ! तुम्हें मनसे शरीर से तथा वचनसे भी नमस्कार है । मैं मानता हूँ कि तुम्हारा दर्शन करके और तुम्हारे निर्मल अमृत तुल्य तीर्थजल में स्नान करके मेरा जन्म अतीव धन्य हुआ । मैं धन्य हूँ , मैं अतीव धन्य हूँ , फिर भी बार बार तुम्हें नमस्कार करता हूँ । इस प्रकार तुम्हारे सेवनसे मैं अत्यन्त कृतार्थ हूँ ॥ १० ॥

इति श्री गोमुखीयात्रावर्णनं समाप्तम् ।

# श्रीगङ्गोत्तरीक्षेत्रमाहात्म्यम् गोमुखीयात्रा गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः

## श्रीगङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः ।

जय जय जगदम्ब ! श्रीगल श्रीजटायां
जय जय जयशीले जह्नुकन्ये नमस्ते ।
जय जय जलशायि श्रीमदंघ्रिप्रसूते !
जय जय जय भव्ये १ देवि १ भूयो नमस्ते ॥ १॥

हे जगदम्बे ! तेरी जय हो ! जय हो ! श्री कंठ शिवजीकी तेजोमय जटामें विराजमान, हे जह्नु कन्ये ! तेरी जय हो ! तुमको नमस्कार है । श्री विष्णुजी के चरणकमलसे उत्पन्न हे देवि ! हे मंगल स्वरूपिणि । तेरी अनेक बार जय हो ! और तुम्हें अनेक वार नमस्कार है ॥ १ ॥

त्रिपथ पथिक पाथः स्रोतसा सिद्धमूर्ति-
दिनकर कुलभूषारत्न यत्नोदयोत्था ।
प्रणतजन सुरदूः पावनी पावनानां
जयति जगति गङ्गा भाग्यपूगोजनानाम् ॥ २॥

स्वर्ग लोक, भूलोक, पाताल लोक इन तीन लोकों में चलनेवाला जलस्त्रोत ही जिसका प्रसिद्ध आकार है; सूर्यकुलके भूषणमणि भगीरथजी की महान् तपस्यासे जो यहां प्रकट हुई है, जो भक्तजनों को कल्पवृक्षके तुल्य हैं, जो सर्वे पवित्र वस्तुओं को भी पवित्र करनेवाली है, और जो मूर्तिमान हुए मनुष्यों के भाग्य समुदाय की भांति भासती है, वह गंगा इस लोकमें सर्वोत्कृष्ट विराजती है ॥ २ ॥

गङ्गे मातरनुस्मरामि सततं त्वन्मूर्ति मत्यद्भुतां
दैवीं दैवतदुर्लभां यमुनया वाचान्न सम्पूर्णया ।
भक्तेनाथ भगीरथेन भगवत् पादैश्च पदार्चकै-
र्या नित्यं समुपाश्रिता विजयते गङ्गोत्तरी सद्मनि ॥ ३॥

इस श्लोकसे श्री स्वामीजी महाराज "गंगोत्तरी" मन्दिरके अन्दर अन्य देवताओंके सहित विराजमान भीगंगाजीका स्मरण करते हैं ।

हे गंगे ! हे माता ! इन्द्रादि देवताओं को भी अति दुर्लभ; अत्यन्त अद्भुतदाय, तुम्हारे इस दैवतरूपका मैं अनुस्मरण करता हूँ, जो यमुनाजी, सरस्वती, अन्नपूर्णा, भक्त भगीरथ और तुम्हारे पादपूजक भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्यसे भी सर्वदा भक्ति सहित उपासित होता हुआ, गंगोत्तरी धाममें सम्पूर्ण महिमासे विराजता है ॥ ३ ॥

तुहिन शिखरिशृङ्गे दिव्यसौभाग्यसम्प-
न्महिमनि विहरन्तीं पुष्पवासे विशाले ।
सुकृति समधिगम्ये सम्यगालीजनाली-
विलसितमलसाक्षीं नौमि गङ्गामभीक्ष्णम् ॥ ४॥

अनन्तर अब इस पद्यसे गोमुखके पुष्पवास स्थानमें क्रीडा करने वाली श्री गङ्गाजीकी स्तुति करते हैं :-
अलौकिक सौन्दर्य सम्पत्तिके माहात्म्यसे युक्त हिमालयके शिखर पर पुण्यवान पुरुषों को ही गम्य, विशालमञ्जुल फूलवासा मैदानमें अनेक सखियोंके सहित सविलास विहार करने वाली, और कमनीय कान्ति वाली श्री गंगाजीकी सदा मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

पादाङ्गुष्ठा द्वोदिता देवि ! विष्णो-
र्गंङ्गोत्तर्यां गोमुखी मस्तकाद्वा ।
गङ्गा गङ्गैवास्य बाधो न किञ्चित्
सर्वेशित्री सर्वथा हि त्वमम्ब ? ॥ ५॥

हे देवि ! तुम विष्णु पादांगुष्ठसे उत्पन्न हो; अथवा गंगोत्तरी में गोमुख के ऊर्ध्व देशसे उत्पन्न हो । तुम गंगा तो सर्वदा गंगा ही हो, तुम्हारे महत्त्वकी ईषण्मात्र भी हानि नही, हे अम्ब तुम सर्वथा सर्वेश्वरी ही हो ॥ ५ ॥

अयि भगवति ? भव्य श्रीमुख श्रीनितम्बे
तुहिन मुकुर हर्म्यस्यान्तरन्तर्वधू वत् ।
अहह ? चरसि चित्रं त्वं तु माता जगत्या-
स्तदपि कथमसूर्यं पश्यतां यासि सहीः ॥ ६॥

गोमुखसे ऊपर गङ्गाजीके दर्शन नहीं मिलते हैं । उधर श्रीमुख नाम पर्वत पक्तियों के नीचे अनेक मील हिम सङ्घातके भीतर गङ्गाजी की धारा दूर से आ रही हैं, इसको अलंकार भाषामें दो श्लोकों से वर्णन करते हैं :-

हे भगवती ! भागीरथी ! दिव्य मंगलमय श्रीमुख पर्वतके मनौर नितम्ब देशमें हिमरूपी कांचके महलके अन्दर नवोढा, अन्तःपुर वधूकी न्याई अहह ! तुम विचरती हो ! यह महान आश्चर्य है कि तुम तो सर्व जगतकी जननी हो । तथापि लज्जायुक्त होकर तुम किस प्रकार सूर्य को नहीं देखने वाली अवरोध स्त्री सी बन जाती हो !

गोमुखके ऊपर चार रंग वाली चतूरंगी नामक हिमधारा जहां गंगोत्तरी हिमधारा नामक गोमुखकी बड़ी हिमधारामें आकर मिल जाती है, उस महान अद्भुत दिव्यप्रान्तको मन में रखकर इस साहित्यरसपूर्ण सुन्दर श्लोककी रचनाकी गई है । बदरीनाथका महान् दुर्गम हिममार्ग इस प्रान्तसे ही चतुरंगी, कालिन्दी आदि हिमधारा तथा अर्वा नामक जलधारा होकर दिव्य हिममय उच्च पर्वतोंको अतिक्रमण करके आगे सरस्वती नदी के किनारे "माना" ग्रामके समीप गस्तोली में जाकर सम्मिलित होता है । और सुमेरु शृङ्गके सदृश सुवर्ण वर्णके महान् ऊंचे अनेक हृदयावर्जक सुन्दर शिखर भी इस प्रान्तसे स्पष्ट रूपसे दृष्टि गोचर होते हैं । विपुल, गंभीर, मनोहर आकार वाली यह गंगोत्तरी हिमधारा आगे सुप्रसिद्ध चौखम्बा शिखरके समीपवर्ती तथा अलकनन्दाके उद्भव स्थान अलकापुरी पर्यन्त लम्बी पड़ी है । इसका दिव्य सौन्दर्य अनुपम और अवर्णनीय हैं । इस हिमधाराके किनारे ही आसपास शिवलिङ्ग, श्रीसुमेरु केदारनाथ आदि तथा भागीरथी पर्वत, सत्यपथ शिखर

आदि पुराण प्रसिद्ध, बहुत सुन्दर दिव्यतर हिम शिखर भी विराजमान हैं । ये सब शिखर गोमुखसे दृश्यमान न होने पर भी अन्य प्रान्तोसे दृष्टिगोचर होते हैं ।

पापैर्मुखं समभवत् खलु नील नीलं
यस्यांऽब ! तस्य तव वेश्म निरीक्षणेन ।
श्रीमन्सुखं भवति भास्कर भासि नूनं
मन्येऽर्थवत्ततवेदं तव वेश्मनाम ॥ ७॥

हे अम्ब ! जिसका मुख पाप कर्मोंसे नील वर्ण हो गया है । अर्थात् काला पड़ गया है, तुम्हारे इस श्रीमुख स्थानके दर्शनसे ही उसका मुख सूर्य के सदृश तेजोमय और श्रीयुक्त अवश्य हो जाता है । इस कारण से मैं मानता हूं कि श्रीमुख करके तुम्हारे स्थानका यह नाम अर्थ रहित रूढि नहीं, किन्तु सार्थक ही है ॥ ६ ॥

प्रसीद भगवत्यंब ! प्रसीद करुणांबुधे ! ।
पुनीहि स्वात्मतुल्यं मे मनो मलमलीमसम् ॥ ८॥

हे माता ! हे भगवती ! तुम प्रसन्न हो ! हे करुणा जलधे ! तुम प्रसन्न हो ! रागद्वेषादि नाना मलोंसे मलन हुए हमारे मनको अपने स्वरूपके तुल्य अर्थात् गंगाजलके सदृश पवित्र बनाओ ॥ ८ ॥

पश्यन्तु केचिदमलं जलमेव गङ्गे-
त्यन्ये वयं तु भवयन्त्रविमुक्ति हेतुः ।
श्रीमूल शक्ति रखिलेश्वररूपरूपि-
ण्यानन्द कन्दमितिनित्यमुपास्महेत्वाम् ॥ ९॥

गंगा केवल निर्मल शुद्ध जलप्रवाह मात्र ही है, इस प्रकार कोई लोग माने तो मानें; हम तो संसार यन्त्र से विमोचनका हेतु जगतकी कारणभूता आदि शक्ति, साक्षात् परमेश्वर स्वरूपिणी, निरतिशयानंदघन, जगज्जननी देवी के रूपसे भक्ति पूर्वक तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

किंवा मुण्डनतः किमस्ति जटया वैवर्ण्यवस्त्रेण किं
किंवा वस्त्र विसर्जनेन भसितालेपेन जापेन किम् ।
भिक्षान्नाशनतश्च किं व्रतशतैस्तीर्थेषु चाटाट्यया
विश्वाधीश्वरि ! युष्मदङ्घ्रियुगलेभक्तिर्न चेन्निश्चला ! ॥ १०॥

हे विश्वेश्वरि ! हे गंगे ! तुम्हारे चरण युगलमें निश्चल भक्ति न हो तो फिर मनुष्यको सिरका मुण्डन करनेसे क्या ? जटा रखने से क्या प्रयोजन ? काषाय वस्त्र के धारण करनेसे क्या ? वस्त्रको छोड़कर नंगा बनने से क्या ? सम्पूर्ण शरीर में भस्मका लेपन करने से क्या ? दिन रात बैठकर जप करने से भी क्या प्रयोजन ? भिक्षान्न का भोजन करने से भी क्या ? नाना प्रकार के व्रत और उपवासादिकोंसे क्या ? और तीर्थोंमें बहुवार भ्रमण करने से क्या ? भाव यह है कि जिसके

मनमें भक्ति का संचार नहीं है, उसको पूर्वोक्त नाना वेष धारण तथा नाना आडम्बर ये सब व्यर्थ ही हैं ॥ १० ॥

गुहाच्छिद्रे वाद्रेः शिखरभुवि वा घोर गहने
श्मशाने वैकाकी वसतु वसतौ वा निजजनैः ! ।
महाभागे ! भागीरथि ! तव पदाम्भोजभजन
प्रमत्तश्चित्तश्चेत् स तु परमयोगी स तु सुखी ॥ ११।

गुहाके छिद्रमें अथवा पर्वतके उच्च शिखर देशमें अथवा भयंकर जंगलमें अथवा श्मशान भूमिमें एकाकी होकर निवास करो, अथवा अपने परिजनों के साथ अपने गृहमें निवास, करो । हे महाभागे ! हे मातृगंगे ! तुम्हारे चरणकमलके भजनमें यदि चित्त निमग्न हुआ हो तो, वही महान योगी है; वही परम सुखी है ॥ ११ ॥

मंगला मंगलानां या पावनानां च पावनी ! ।
भुक्तिदा मुक्तिदा चास्यै जह्नुजायै नमो नमः ॥ १२॥

जो सर्व मंगल मूर्तियोंकी भी मंगल मूर्ति है, सर्व पावन वस्तुओं की भी पावनी है, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली उस जाह्नवीको बार बार नमस्कार है ॥ १२ ॥

प्रातः सायं दिनमथनिशा माससंवत्सरौचे-
त्येवङ्कालः प्रचलति चलत्यायुरप्युग्रवेगम् ।
क्षुद्रान् भोगान् त्यजतु भजतु श्रीपदं प्रेमतोऽन्तः
स्वर्गङ्गायाः श्व-इति मतिमान् मानवो मा ब्रवीतु ॥ १३॥

प्रातः और सायं, दिन तथा रात्रि, मास और संवत्सर इस प्रकार काल व्यतीत होता है, एवं मनुष्य की आयु भी अत्यन्त उग्र वेगसे चलती रहती है । क्षुद्र भोगों का त्याग करो; भक्ति पूर्वक सुरनदी श्री गंगाजीके श्रीपदका भजन करो; बुद्धिमान मनुष्य आज नहीं कल करेंगे ऐसा कभी न कहे ॥ १३ ॥

प्रसीद गङ्गे ! भगवत्यभीक्ष्णं त्वत्प्रेमयाचेऽन्यदहं न याचे ।
त्वदम्बुधारावदखण्डरूपं प्रसीदभूयोऽपि नमोऽघ्रिपातैः ॥ १४॥

हे गंगे ! हे भगवती ! तुम प्रसन्न हो । वार वार तुम्हारी जल धाराकी न्याई अखण्ड रूप तुम्हारी भक्ति की प्रार्थना करता हूँ, और कुछ भी मैं याचना नहीं करता । चरण में गिरकर अनेकानेक बार नमस्कार

करता हूँ तुम प्रसन्न हो ॥ १४ ॥

गङ्गोत्तर्यामिह गिरिगुहावेश्मनि त्वत्पदान्ते
पाद्म पीठे स्थिरमृजु कदा संस्थितः सन् सुखेन ।
न्यस्तस्वान्तस्वयि शिवतनो ! देवि ! कस्तूरिकाणां
सङ्घर्षाश्मायितमिदमहं विस्मरिष्यामि देहम् ॥ १५॥

हे मंगल मूर्ति ! हे देवि ! यहां श्रीगंगोत्तरीमें गिरि गुहाके अन्दर
तुम्हारे चरणोंके समीप पद्मासनमें ऋजु और स्थिर रूपसे सुखतया
अवस्थित होकर तुम्हारे स्वरूपमें चित्तका निरोध करता हुआ शिलाके
सदृश स्तब्ध, निश्चल, तथा कस्तुरी मृगोंके कण्डूयन क्रीडाका
स्थान हुए इस देह को मैं कब विस्मरण करूंगा ॥ १५ ॥

इति गङ्गास्तोत्रसङ्ग्रहः सम्पूर्णः ।

Encoded and proofread by Swamini Tattvapriyananda tattvapriya3108 at gmail.com

*Shri Gangottari Kshetramahatmyam Gomukhiyatra Gangastotrasangraha*
pdf was typeset on December 17, 2022

Please send corrections to *sanskrit@cheerful.com*